णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं,

एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

कुण्डल पुर के
राजकुमार

भगवान महावीर



कुण्डलपुर के राजकुमार

भगवान महावीर

मुख्य वितरक:—

सीक्रेट सर्विस कार्यालय एण्ड प्रेस

३३/२० हरी नगर, मेरठ शहर।

५४७८

प्रथम संस्करण—जून १९७१

द्वितीय " —अक्टूबर १९७१

मूल्य दो रुपया

पुस्तक — कुण्डलपुर के राजकुमार भगवान महावीर

लेखक — जयप्रकाश शर्मा

प्रकाशक — प्रभात पाकेट बुक्स, हरी नगर, मेरठ शहर।

मुद्रक — सर्विस प्रेस, मेरठ शहर।

कुण्डलपुर के राजकुमार भगवान महावीर

प्रस्तुत कर्त्ता—जयप्रकाश शर्मा

★ इतिहास कृतज्ञ है कि युद्ध और हिंसा के कालिमा की गहन राह पर भगवान महावीर जैसे महान् तीर्थंकरों का अहिंसा वर्धक जीवन स्वर्ण की सी प्रभा लेकर मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

★ विश्व कृतज्ञ है कि विश्व की जनता में समभाव, भाई चारा, अहिंसा और संयम का प्रतिमान उपस्थित करने वाले भगवान महावीर भी विश्व की जनता मे से ही एक थे।

★ भारत कृतज्ञ है कि उसकी गोदो मे ऐसा महान् उज्जवल सितारा ज्ञान का पूंजी भूत होकर उतरा, उसकी माटी में खेला, उसकी नदियो का जल पिया और अपनी महानता से भारत को महान् बना गया।

★ प्रातः स्मरणीय महावीर स्वामी भगवान वर्द्धमान का जीवन चरित्र भक्तों के लिये अमृत है, भारतीय जनता के लिये संजीवन है और विश्व की भटकती जनता के लिये जगमगाता प्रकाश स्तंभ है।

★ पच्चीस शताब्दी पूर्व भारत की धरती को उस महान् तीर्थंकर का स्पर्श मिला था। अब जब कुछ ही वर्षों मे इस महान् तीर्थंकर के निर्वाण की पच्चीसवीं शताब्दी समारोह मनाया जायेगा तो उस कार्य में छोटा सा अनुष्ठान है इस पुस्तक का प्रकाशन जिसे यशस्वी उपन्यासकार एव पत्रकार श्री जयप्रकाश शर्मा ने बड़े मनोयोग से लिखा है।'

धर्म का आडम्बर हो या वासना का कुठारा घात सा वार
हिंसा की काली करतूतें हो या समाज में असमानता
का बोध'''भारत को गर्व है कि जब विश्व के
राष्ट्र मृत्यु के नाम से ही चिन्तित हो जाते थे
क्षणिक राग रंग के लिए मां अपने ही
बेटे की प्रेमिका बनने में भी नहीं
हिचकती थी मनोरंजन के
नाम पर खोपड़ी की
मशालें जलाकर रथों
की दौड़ की जाती थी
और नृशंसता का
नंगा नाच किया
जाता था।
तब
भारत की ही पुण्य भूमि में
भारत की मिट्टी को चन्दन का सा गौरव
प्रदान करने के लिये पहली बार प्राणीमात्र
मे समता दया ममता और अहिंसा का
भाव उपस्थित करने के लिये, हिंसा को अहिंसा
से जीतने के लिये, प्राणीमात्र को ईश्वर तक पहु-
चने के लिये ही नहीं स्वयं परमपद प्राप्त रहने का अह-
सास कराने वाले भगवान महावीर वर्द्धमान २४ वें तीर्थ
कंर के रूप मे अवतरित हुये थे उनकी पुण्य जीवन
गाथा दीनहीन में नवजीवन असंयमी और
कामुक जीवों मे संयम और
निष्ठा पैदा कर देती है
उनकी स्मृति का
यशोगान करने
वाले तीर्थ महान
हो गये, मधुर
हो गये।

१ जहां जहां भगवान के चरण पड़े : माटी चन्दन हो गई

मेरे देश की धरती, भारत की धरती गौरवमयी धरती है। विशिष्ट है यहां कि ऋतुयें, विशेष हैं यहां की धरती। कवियो ने अगर यह कहा है कि इस देश की मिट्टी चन्दन से भी ज्यादा पवित्र है तो उसमें कोई अतियुक्ति नहीं। पूरे संसार का इतिहास युद्ध, मारकाट से भरपूर इतिहास की कहानी कहता है, मगर भारत का गौरवशाली इतिहास कुसज्ञ है उन महापुरूषो का, जिन्होने भारत भूमि पर जन्म लेकर भारत के इतिहास के वे स्वर्णिम पृष्ठ भी सजो दिये जिनके गौरव को लेकर भारत विश्व मे अपनी गरिमा से चकाचौध पैदा कर सकता है।

भारत की शस्य श्यामला धरती, जिसकी मिट्टी में महापुरुषों की सुंगध शामिल है भारत का वह वायुमडल जिसमे महान दिव्य आत्माओं का वाणी ओज सम्मिलित है आज भी अपने अन्तर मे सैकड़ों विशिष्ट स्थान संजोये हुये है। लगता है कि पूरा भारत एक बहुत बड़ा उद्यान है और उसमें जगह जगह सुरभित पुष्पों से अच्छादित गल्प गुच्छ के रुप में तीर्थकंर प्रस्फुरित हो रहे हैं इन तीर्थो में कुछ विशिष्ट तीर्थ उस महान तीर्थकंर की स्मृति का गुणगान करते है जिसकी २५ वी निर्वाण शताब्दी मनाने की तैयारी हो चुकी है और इन पंक्तियों का लेखक अपने इन सीमित पृष्टों मे उस प्रातः वन्दनीय महान तीर्थकंर की अनुपम गाथा को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है। चान्दन गांव से लेकर

साकेत, श्रे माल, वैशाली, वीर भूमि, राजग्रह, मृगग्राम, मिथिलापुरा वेलगाम, दडा गांव, चांदनपुर, पुरिमाताल, पाकवीर, पफोस, नवलशिला दहोगांव, तेगपुर, चम्पा, गोवंक ग्राम, गुणावा, कोल्लाकसन्निवेश (कोल्यनगर), कुमारीपर्वत खण्ड गिरि, उदयगिरि, अपापानगरी (पावर पुर),अहिच्छेदन आमल कल्पा अलिमरा,उज्जैन,कम्पिला, कर्ण सुवर्ण, काकन्दी, और कुण्डलपुर तथा कुण्डग्राम में भगवान महावीर की सिद्धान्त सुरभि बिखरी है । भक्त जन निरन्तर देश के कोने कोने से आकर इन इन तीर्थों की मिट्टी को चन्दन से भी ज्यादा पूज्य मानकर माथे पर लगाते है। भगवान महावीर के उपदेशो को स्मरण करते हैं । जब पूरा विश्व अर्थ की दौड़ में बदहवास सा नाच रहा है, उत्तेजना और वासना की दौड़ लगी है, स्वार्थ और शौक के लिये हिंसा को नितकर्म में शामिल कर लिया गया है । ऐसे ही क्षणो मे दूर दूर से आये यात्री, इन पुण्य स्थलियों में जाकर शपथ लेते है कि वे हिंसा नही करेंगे । झूठ नही बोलेंगे । अनावश्यक परिग्रह नही करेंगे । वे मतलब सग्रह करके अन्य लोगो को असुविधा नही पहुचायेंगे । और अपने पर नियन्त्रण करेंगे । अपनी आत्मा पर नियन्त्रण करेंगे ।

क्योकि भगवान महावीर ने उस सत्य को आज से पच्चीस शताब्दी पूर्व जान लिया था कि तप, निष्ठा और मनुष्य के कर्म ही उसके वास्तविक संगी है । मृत्यु, बुढापा, दुख से घबराना मूर्खता है । जो जैसा करता है वैसा उसे भोगना ही पड़ता है । जीवन का उद्देश्य जीना नही विश्व के अन्य लोगों को जीने देना है । जो सिर्फ जीने के लिये आडम्बर, पाप, और अनाचार करता है उसे भी मृत्यु के मुख में जाना होता है और इन कर्मों की कहानी सिर्फ एक जन्म में समाप्त नहीं होती । अत्याचारी और

दुराचारी व्यक्ति केवल यह सोच कर छूट नहीं जा सकता कि मरना तो है ही । मरने से पूर्व जो मरजी आये किया जाये। जैसे मर्जी आये जिया जाये, मर ही तो जाना है ।

जीवन मरण मुख्य नहीं । मुख्य हैं आवागमन से मुक्ति । आज जो कुछ हम भोग रहे है, वह आज की कमाई नहीं, पिछले कर्मों का प्रताप है, लेकिन भविष्य मे क्या होगा वह आज पर निर्भर है । सर्व प्रथम भगवान महावीर ने ही बतलाया कि मनुष्य के, प्राणी मात्र के कर्म प्रधान है ।

किसी ने ठीक ही कहा है—भगवान महावीर तप प्रधान संस्कृति के उज्जवल प्रतीक है । भोगों से भरे हुए इस संसार मे एक ऐसी स्थिति भी सम्भव है, जिसमे मनुष्य का अडिग मन निरन्तर संयम और प्रकाश के सानिध्य मे रहता है । इस सत्य की विश्वसनीय प्रयोगशाला भगवान महावीर का जीवन है । वर्धमान महावीर गौतम बुद्ध की भाति नित्तांत ऐतिहासिक व्यक्ति है । माता पिता के द्वारा उन्हे भी हाड़ मांस का शरीर प्राप्त हुआ था । अन्य मानवों की भाति वे भी कच्चा दूध पीकर बड़े हुए थे। किन्तु उनका उदार मन आलौकिक था । तप और ज्योति । सत्य और अनर्थ के संघर्प मे एक बार जो मार्ग उन्होने स्वीकार किया, उस पर दृढ़ता से पैर रखकर हम उन्हे निरन्तर आगे बढ़ते हुए देखते है । उन्होने अपने मन को अखन्ड ब्रह्मचर्य की आच मे जैसा तपाया था, उसको तुलना में रखने के लिये अन्य उदाहरण कम ही मिलेंगे । जिस अध्यात्म केन्द्र मे इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त की जाती है···उसकी धारायें देश और काल मे निःसीम प्रभाव डालती है ।

भगवान महावीर का जीवन वास्तव मे इससे बढ़कर रहा है।

अतुलनीय, भव्य, सार्थक और ऐसा कि लेखनी लिख नहीं सके। वाणी बोल नहीं सके। मगर इसके बावजूद भी वसन्त आते गये, पतझड़ विदा लेते गये। भारत की पुण्य भूमि…भारत का अनुपम वायु-मण्डल…प्रभु के चरण रज से पुलकित हो, प्रभु की वाणी से गौरव प्रदान करता हुआ आज भी भटकते प्राणियों को मुक्ति की राह दिखा रहे हैं।

जहां जहां इस प्रकार की दिव्य आत्माओं के चरण पड़ते हैं, वहां की मिट्टी चन्दन बन जाती है। फिर मेरा देश क्यों न कृतज्ञ होगा। इस महान तीर्थंकर के प्रति जिसके चरण रज्ज से यहां की मिट्टी चन्दन से भी अधिक पवित्र, अतुलनीय एवं यशस्वी हो· गई है और समता, सामन्यता एवं सरलता का जो, पथ आलोकित हुआ…उससे न जाने कितने प्राणी मुक्ति की राह पर पहुंच चुके हैं। वह पथ आलोकित रहे, भगवान वर्द्धमान का जीवन, भगवान वर्द्धमान का उपदेश और आदेश जनमत मे सुचिता, पवित्रता और उन्मुक्तता का भाव भरते रहे और ये महान तीर्थ जो भगवान महावीर के चरण रज से पवित्र हैं…आज भी कोटि कोटि जन-मानस में सुचिता और गरिमा भरी सत्यता'बांट रहे हैं। उस महान शक्ति पुंज से सिंचित है जिनकी गरिमा की भव्यता से प्रभावित होकर कवि का अन्तर बोल ही उठा—

ललाट में एक अनुपम ज्योति है,
प्रसन्नता आनन में विराजती।
मनोलता शोभित अंग अंग में,
पवित्रता है पद पद्म चूमती।

(श्री अनूप शर्मा कृत्त वृद्धमान से (महाकाव्य) से साभार उद्धत,) लेकिन यह गरिमा कोई अज्ञात कृपा नहीं। तप और

महातप की कठोर साधना का परिणाम है। जिसका ध्येय संसार का सुख नहीं, ऋद्धि सिद्धि नहीं मुक्ति की वह अकाट्य चाह है... जिसको महज मानव ही नहीं, त्रियंच और स्थावर गति के एक इन्द्री से लेकर पांच इन्द्री के सभी जीव केवल अपने कर्मों के कारण उपयुक्त और अनुपयुक्त है। सांसारिक आवागमन से छुटकारा, उद्देश्य भरा जीवन तथा, जन्म जरा मृत्यु सबके प्रति समान भाव का बोध कराने वाले भगवान वर्द्धमान का जीवन चरित्र युगों युगों तक प्राणी मात्र में निरन्तर नई चेतना का प्रसार करता रहेगा। उस महान जीवन गाथा की कुछ झांकियां अगले पृष्ठों पर अंकित करने से पूर्व मंगलाचरण के रूप मे उस अभिनन्दनीय महान तीर्थंकर के चरण रज से कृतार्थ शांति और शुचिता के प्रतीक तीर्थों का स्मरण करना भी आवश्यक होगा जहां समूचे भारत, से दूर और पास से शहर और देहात से स्त्री और पुरुष, बच्चे और बूढे श्रद्धा के सुमन लेकर आते है।

अति मन, दुःखी हृदय, मगर उत्साहित उमंग से पुलकित रोम रोम भव्य शुचिता के आगार मे आकर प्राणदायिनी शान्ति का अनुभव करते है। अनुभव करते हैं...उस गरिमा का स्पर्श जो लगभग पच्चीस शताब्दी बीतने के बाद भी अजर और अमर है और भटके हुए प्राणियो को राह दिखा रही है। युद्ध नहीं शांति, हिंसा नही अहिंसा, तिरसा नहीं सन्तोष, वासना नहीं संयम, उत्तेजना नहीं सहजता का सन्देश, देने वाले इन सारपूर्ण उपदेशों की आवश्यकता जितनी आज है उतनी कभी नही थी।

अस्तित्व, संघर्ष, आपाधापी, व्यापार और सांसारिक सुख जुटाने की न मिटने वाली होड़ ने जिस तामसी वृत्ति को जन्म दिया है...उसका अपरिहार्य करने के लिये गूंजती है। प्रार्थना

स्वर में स्तुतियां और नमोकार मन्त्र।

अपने आप स्मृति हो जाती है उस दिव्य, विराट और युक्ति-प्रद आदेशों की जिनको लीक पर चलकर साधारणतम जीव भी एक के बाद एक सीढ़ी पार करता है। एक के बाद दूसरी गति को छोड़कर मनुष्य देह धारण करके अरहंत पद पर पहुंचकर जन्म जरा और मृत्यु से ही नहीं आवागमन के क्रम से छूटकर महानतम पद का गौरव प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

पथ प्रशस्त है उस मंजिल का जहां कर्त्तव्य बोध है। मगर कर्त्तव्य के मार्ग में स्वार्थ, हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह नहीं आता। आती है भावना, शील और सदाचार, शांत और त्याग और उनको अपना कर प्राणी मुक्त होता है। समाज अपनाता है, देश अपनाता है तो वह गरिमा की बुलन्दियों को छूता है। क्योंकि जब तक देशवासी संयम, नियम असरार व्यवहार में शुचिता, पवित्रता, गरिमा और अहिंसा का बोध रहेगा। उनकी ओर विश्व आंख उठाकर भी नही देख सकता और जिस समाज में हिंसा का बोलबाला होता है। वैमनस्य और लालसा, वासना और उत्तेजना चरम सीमा पर होती है। उसको युद्ध रत होना ही पड़ता है। गवाह हैं रोम के वे साम्राज्य जहां क्षणिक लालसा के लिये मां बेटे को वासना का शिकार बनाने से नहीं चूकती थी। झोपड़ियों की मशालें जलाकर मनोरंजन होता था और छल प्रपंच से युक्त जीवन को सार्थक जीवन माना जाता था। वह रोम साम्राज्य ही क्या ? आतातायी और अत्याचारी राजाओं का अन्त हो गया। साम्राज्य नही बचे, आक्रमणकारी लोट पोट हो गये।

इतिहास के काले पृष्ठ भी विस्मृति के कगार में गिर गये। मगर दिव्य महान पथ के प्रदर्शक का पथ अभी भी आलोकित है और सदैव आलोकित रहेगा। क्योंकि कर्म छूटते है। कषाय मिटती हैं। पाप समाप्त होते है और हिंसा पर अहिंसा, काम, क्रोध, मद, लोभ पर संयम, सन्तोष सदैव विजयी होते आये है और होते रहेगे।

पवित्रता के प्रतीक, भगवान महावीर की चरण रज से कृतज्ञ ये महान तीर्थ, जिस गरिमायुक्त वातावरण को अपने अन्तर में संजोये हुये है। उस वातावरण के युग में पहुंचने के लिये हमे समय की कई खाईयां पार करनी होगी'''लगभग पच्चीस शताब्दी पूर्व तव विश्व में दु:खमा-सुखमा काल का अन्तिम पांव खिसक रहा था, सुख पर दु ख हावी हो रहा था। ऐसी स्थिति में सम्पन्नता संयम पर हावी होती है और उस काल में कुछ ऐसी ही स्थिति थी। भारतवर्ष में अर्थ संकट नही था। भोजन, वस्त्र की कमी नहीं थी। मगर दास प्रथा थी। व्यापार दूर दूर तक फैलता जा रहा था। मगर सम्पन्नता ने लोगो को पापपंक में फंसा दिया था। शिक्षा का प्रचुर प्रभात होते हुए भी विलासता थी और कामुकता की मात्रा, वासना की भूख सीमा लांघ गई थी। स्त्रीत्व की हीनता और नैतिक मर्यादा अपना बन्धन छोड़ चुकी थी।

शीलधर्म का अस्तित्व मिट चला था।

अनाचार बढ़ रहा था।

गन्धर्व विवाह, बलात्कार और अपहरण ही नहीं, नगर में फैले सार्वजनिक स्नानग्रह, सभाग्रह और नाटय शालाओं में आमोद प्रमोद कामुकता की सीमा को लांघ चुका था।

और इनसे भी दूर अलग'''।

नैतिकता और धर्म, संयम और अनुशासन महज दिखावे की बात हो गई थी।

आडम्बर बढ़ रहा था।

दैहिक सुख, सांसारिक सुख और जीभ के स्वाद के लिये घोर अनर्थ हो रहे थे।

पशु वध की परम्परा सीमा लांघ चुकी थी।

स्वार्थ उभरकर सब ओर छा रहा था। दिखावे के लिये किया गया धर्म आचरण प्रचुर हो रहा था।

उस वक्त स्वयं जैन धर्म की क्या स्थिति थी इस विषय में स्वयं एक जैन लेखक ने लिखा है।

'इस संघर्ष में धर्म की बुरी दशा थी। धार्मिक अराजकता चहुं ओर फैली हुई थी। एक नहीं बल्कि संभवत तीनसौ तरेसठ मत-मतान्तर प्रचलित थे। लोग हैरान थे। अज्ञान अन्धकार में पड़े हुए ज्ञान ज्योति पाने के लिये लालयित थे। दो विभिन्न विचार धारायें बह रही थीं। (१) श्रमण परम्परा और (२) ब्राह्मण परम्परा। श्रमण परम्परा को राजश्रय मिला था। अधिकांश क्षत्रिय इन श्रमणों को अपनाते थे। आजीवक अचेलक प्राचीन जैन बौद्ध आदि सम्प्रदाय इनमें मुख्य थे। जैन श्रमण परम्परा क्षीण धारा में चली आ रही थी। श्रमणगण अन्तिम तीर्थंकर की प्रतीक्षा में थे। इसलिये विशेष प्रख्यात धर्म प्रवर्तक अपने को तीर्थंकर घोषित करने का मोह संवरण नहीं कर सके थे। किन्तु काठ की हांडी एक दफा ही चढ़ती है। आखिर उनका पतन अवश्यम्भावी था। बौद्धों ने [illegible] और विशेषतः जैनों का उल्लेख तीर्थिक (तित्थिय) नाम से किया है। इनमें पूर्ण

काश्यय मस्करि गोशालिपुत्र संजय वैदीत्वपुत्र, अजित के शकम्बली पकुट कात्यामन और शाक्य पुत्र गौतम बुद्ध प्रमुखमत प्रवर्तक थे। यद्यपि इनके सिद्धान्त प्राय: लचर थे। परन्तु उस क्रान्तिमय काल में जो भी व्यक्ति ब्राह्मण वाद के विरुद्ध खड़ा होता था। लोग उसी को अपना लेते थे। पूर्ण काश्यय एक दिगम्बर साधू था। दिगम्बर वह इसलिये रहता था। कि नग्न भेप मे मान्यता अधिक होगी। उनको पता था कि मनुष्य जो कार्य स्वयं करता है अथवा दूसरो से करवाता है। वह उसकी आत्मा नही करती और न करवाती है। (एवम् अकार्यं अप्पा) अर्थात् वह अक्रियावादी थी। सभवत काश्यय ने भगवान पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपारित निश्चय धर्म का अवलम्बन लिया। उसने व्यवहार को ताक मे उठाकर रख दिया। निश्चय तप की उपेक्षा आत्मान कर्त्ता है, न भोक्ता है। वह शुद्ध बुद्ध है। परन्तु संसार मे वह शरीर बन्धन मे है, इसलिये निश्चय एकान्त उपादेय नही है।

संखलिगोशाल भी पूर्ण काश्यय की तरह दिगम्बर वेश में रहता था। श्री देवासेन आचार्य ने लिखा था। कि पूर्ण ओरे मस्करि दोनों ही पार्श्वनाथ जी की शिष्य परम्परा के मुनि थे जो भृष्ट हो गये थे। श्वेताम्बीय शास्त्रो मे मंखतिपुत्र गोशाल को स्वय भगवान महावीर का शिष्य उनको छद्मस्थ अवस्था का बतलाया है। उस साधना काल में भगवान मौन से रहे थे। वह गोशाल को कैसे शिष्यत्व देते जब कि वे स्वयं गुरूपद को प्राप्त नहीं हुये थे। किन्तु शक नहीं कि पूर्ण काश्यय और मस्करि गोशाल प्राचीन जैन धर्म भगवान महावीर के जैन धर्म से अवश्य सम्बन्धित थे। इन दोनों मत प्रदर्शकों का आपस में गहन सम्बन्ध था, और गोशाल ने जैनियो के पूर्वगत ग्रन्थों

के आधार से अपने मत के सिद्धान्तों को नियत किया था। जब भगवान महावीर स्वयं तीर्थंकर हो गये और उनके गणधर नवदीक्षित ब्राह्मण इन्द्रभूति गौतम हुये तब गोशाल यह सहन नही कर पाये वह पुराने दिगम्बर मुनी थे। जैनियों के पुरातन ग्यारह अंग और कुछ पूर्व शास्त्रों को जानते थे, फिर भी उन्हे गण धर पद नहीं मिला वह रुष्ट होकर श्रावस्ती आप और अपने को तीर्थंकर बतलाकर लोगों को उपदेश देने लगे कि ज्ञान से मोक्षय नहीं होता। ज्ञानी और अज्ञानी संसार में नियत काल तक परिभ्रमण करते हुये समान रीति से दुख का अन्त करते है। देव या ईश्वर कोई है ही नही इसलिये स्वेच्छा पूर्वक शुन्य का ध्यान करना चाहिये। लोगों ने गोशाल की यह नयी बात ध्यान से सुनी और उसके अनुयायी भी हो गये किन्तु तीर्थंकर महावीर रूपी ज्ञान सूर्योदय होते ही वह हत प्रभ हो गया। गोशाल को अपनी करनी पर पश्चाताप हुआ और वह बुद्धि भ्रष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ उसके आजीवक मत की गणना अज्ञानमत में की गई है।

और समाज व्यवस्था पर भी इसी लेखक के मान्य विचार है—

परन्तु पुरातन ब्राह्मण परम्परा हिंसा पूर्ण यज्ञ प्राप्त आदि करने में ही मग्न थी। वर्णाश्रम धर्म का मनमाना अर्थ करके ब्राह्मण-ब्राह्मण ऐतर वर्णों पर घोर अत्याचार कर रहे थे। शूद्र और स्त्रियां तो मनुष्य नही समझे जाते थे। जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों में ऐसे कई प्रसंग जिनमें जात्याभिमान के घातक परिणाम चिन्हित हैं। चित्तसंभूत जातक से स्पष्ट हैं कि चान्डालों को रास्ता निकालना भी दुश्वार था। एकादफा ब्राह्मण और वैश्य स्त्रियों को दो चान्डाल रास्ते में जाते मिले। स्त्रियों ने इसे अपशकुन माना-अपनी

आंखो को जल से धोकर शुद्ध किया और उन चान्डालो को खूब पिटवाकर उनकी दुर्गति की···

और···

पशुमत को पराकाष्टा वासना तृप्ति का साधन बना हुआ था।

निर्दोष दीन असहाय पशुओं के रक्त से यज्ञ की वेदी लाल-लाल हो रही थी। पशु की बलि देकर लोग यह समझते थे कि देवता प्रसन्न हो गये है। और वे यजमान की मनोकामना पूर्ण करेंगे। मगर ऐसा होता कही नही था। हां, पुरोहित समुदाय को दान दक्षिणा इसमे खूब मिलती थी। इस भयानक हिंसा प्रवृत्ति ने उस समय सज्जनो के दिल को दहला दिया।

(श्री कामता प्रसाद जैन कृत भगवान महावीर से साभार उधृत

दान से और यज्ञ से बुरे कर्मों के प्रभाव को समाप्त करने की प्रवती ने दुष्कर्मो को बढावा दे दिया था। पाखन्ड और ढोंग की बन आई थी और वासनामय आमोद प्रमोद अनगिनतरूप में विकसित हो रहा था। कही पशुयज्ञ कही हर योग, कही पाखन्ड और ढोंग। तो ऐसी स्थिति मे देश का एकीकरण कैसे हो सकता था। यह सच था कि अन्यायी राजा को पद से हटाने का अधिकार था, और राजा को प्रजा ही चुनती थी, मगर एक सार्वभौम सत्ता को संजोने वाला चक्रवृत्ति राजा का अभाव सदैव खलता रहता था और पूरा देश छोटे छोटे गणराज्यों और सघ में बंटा था। जिनमें प्रमुख थे।

(१) अंग (२) कलिंग ३) उत्तरीय कौशल (४) मगध (५) मल्दय (६) शाक्य और लिच्छवि गणराज्य।

लिच्छवि गणराज्य मे आठ क्षत्रिय कुल के प्रतिनिधि राजा की पदवी से विभूषित थे, मगर उनमे प्रमुख लिच्छवि ही थे। इस गणराज्य की राजधानी वैशाली थी वैशाली के आसपास ही कुन्डलग्राम कुन्डलपुर आदि बसे थे।

लिच्छवि नामक राज्य संघ में जिस राजा का प्रभुत्व था। उसका नाम था, चेटक। चेटक के पुत्र सिंह भद्र के नौ भाई और सात बहनें थी।

भाई थे ! धन, प्रभास, प्रभंमत, अकेमक, सुपंगम, सुदत्त, सुकंभोज, दत्तभद्र, उपेन्द्र।

सात बहनें थी ? चन्दना, ज्येष्ठा, चेलनी, प्रभावती सुप्रभा, मृगावती और सबसे बड़ी त्रिशला।

चन्दना और ज्येष्ठा आजन्म ब्रह्मचारिणी रही। चेलनी मगध के सम्राट को ब्याही गई। प्रभावती कच्छ प्रदेश के राजा तदगन की पटरानी बनी।

सुप्रभा दशार्ण देश की रानी हुई।

मृगावती श्रावस्ती नरेश शतानिक को ब्याही गई और वत्सराज उदयन की मां बनी।

सबसे बड़ी बहन थी त्रिशला…

अपरिमित ज्ञान दया, करुणा, ममता का भरपूर भंडार लिये यह विदूषी कहलाती थी, विदेहदत्ता। महावीर भगवान की पूज्य माता होने का गौरव इसी महान नारी को मिला था और उन्होंने कवि की इस उक्ति को चरितार्थ कर दिखलाया था।

जननी जने तो भक्त जन, कै दाता के सूर।
नहीं तो माता बांझ रह, काहे गवाये नूर॥

देश की स्थिति समाज की दशा और धर्म मे आडम्बर इतना बढ़ गया था कि वास्तव मे लोग बाट जोह रहे थे। भगवान महावीर के आगमन की।

क्योकि जब जब धर्म के प्रति अरूचि बढती है, धर्म का विनाश होता है. हिंसा अहिंसा पर सवार होती है, कही कोई ज्योति प्रस्फुटित होती है।

गर्मी के बाद वर्षा का आना स्वाभाविक है। भगवान महावीर का आगमन भी इसी प्रकर प्रतीक्षित था और निरीह जनता, प्राणी टकटकी लगाये देख रहे थे।

लिच्छवि गणराज्य में आठ क्षत्रिय कुल के प्रतिनिधि राजा की पदवी से विभूषित थे, मगर उनमें प्रमुख लिच्छवि ही थे। इस गणराज्य की राजधानी वैशाली थी वैशाली के आसपास ही कुण्डलग्राम कुन्डलपुर आदि बने थे।

लिच्छवि नामक राज्य संघ में जिस राजा का प्रमुत्व था। उसका नाम था, चेटक। चेटक के पुत्र सिंह भद्र के नौ भाई और सात बहनें थीं।

भाई थे! धन, प्रभास, प्रभवन, अकेशक, तुरंगम, सुदत्त, सुकंभोज, दत्तभद्र, उपेन्द्र।

सात बहनें थीं? चन्दना, ज्येष्ठा, चेलनी, प्रभावती सुप्रभा, मृगावती और सबसे बड़ी त्रिशला।

चन्दना और ज्येष्ठा आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं। चेलनी मगध के सम्राट को ब्याही गई। प्रभावती कच्छ प्रदेश के राजा उदयन की पटरानी बनी।

सुप्रभा दशार्ण देश की रानी हुई।

मृगावती शाक्यों नरेश शतानिक को ब्याही गई और वत्सराज उदयन की मां बनी।

सबसे बड़ी बहन थी त्रिशला…

अपरिमित ज्ञान दया, करुणा, ममता का भरपूर भंडार लिये यह विदूषी कहलाती थी, विदेहदत्ता। महावीर भगवान की पूज्य माता होने का गौरव इसी महान नारी को मिला था और उन्होंने कवि की इस उक्ति को चरितार्थ कर दिखलाया था।

जननी जने तो भक्त जन, कै दाता के सूर।
नहीं तो माता बांझ रह, मती गमावे नूर॥

देश की स्थिति समाज की दशा और धर्म मे आडम्वर इतना बढ़ गया था कि वास्तव मे लोग बाट जोह रहे थे। भगवान महावीर के आगमन की।

क्योंकि जब जब धर्म के प्रति अरूचि बढ़ती है, धर्म का विनाश होता है, हिंसा अहिंसा पर सवार होती है, कही कोई ज्योति प्रस्फुटित होती है।

गर्मी के बाद वर्षा का आना स्वाभाविक है। भगवान महावीर का आगमन भी इसी प्रकर प्रतीक्षित था और निरीह जनता, प्राणी टकटकी लगाये देख रहे थे।

२ प्रभू लाये इस जग में मंगल प्रभात……

भगवान महावीर का जन्म जिस परिवार में हुआ वह ज्ञात् क्षत्रियों का प्रसिद्ध घराना था। इस घराने का मुख्य स्थान वैशाली कुन्डग्राम वणियगांव, कोल्लग, आदि मे विकसित था। कहा जाता है कि आज जो बसाढ़ नामक गांव जिला मुज्जफरपुर मे है, वहां और उसके आस पास महानगर वैशाली था। वैशाली के निकट ही कुन्डग्राम और वणिय ग्राम बसे थे। एक तरह से वे वैशाली के ही भाग थे। यही कारण था कि कुन्डग्राम मे, अर्थात कुन्डलपुर मे जन्म लेने के बावजूद भी वे वैशालिय कहलाये।

उस समय तो कुन्डलपुर की शोभा ही और कुछ थी। एक तो भगवान महावीर के जन्म की सम्भावना से ऋतुयें पावन हो गई थी समयानुसार ऋतु आती जाती थी। दूसरे कुन्डलपुर की जनता और शासक दोनों ही धर्म प्राण थे। संयमी जीवन तप की दिन चर्या आदि ने कुन्डलपुर के वातावरण को बड़ा मनोरम कर दिया था।

कुन्डलपुर के राजा सिद्धार्थ राज सत्वार्थ और रानी त्रिशला के होनहार, यशस्वी और वीरपुत्र थे। सिद्धार्थ का विवाह लिच्छवी के प्रधान राजा चेटक की पुत्री त्रिशला प्रियकारिणी से हुआ था। क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ विद्वान थे और उनके शासन मे प्रजा सुखी थी। संयम जीवन का महत्वपूर्ण अंग था और उसी के कारण महारानी त्रिशला प्रिय कारिणी का समय अक्सर ज्ञान गोष्ठियों मे कटता था।

भगवान महावीर जब गर्भ में थे, तब ही से उनकी दिव्य प्रतिभा की झलक मिलती थी ज्ञान गोष्ठियो में अजीब अजीब चर्चायें होती थी।

भगवान महावीर का पूरा जीवन इस बात का साक्षी रहा है कि परिश्रम जीवन का अ ग है। अगर परिश्रम आदमी करे संयम का जीवन जिये तो वह पाप मुक्त होकर कर्मो से दूर व पंचपर–मेष्टी का पद पाकर अरहंत हो सकता है।

•उनके सारे प्रयास एतिहासिक एवं क्रातिकारी रहे थे उन्होंने शुरू से ही जिन क्रातिकारी विचारो को अपने मन मे धारा था उसको जिम्मेदार थी उनकी माता। उनको संसार में लाने वाली गौरवशाली महिला जिसके कुशल प्यार ने महावीर स्वामी को तीर्थ करं बनने की प्रेरणा दी। तीर्थंकर भगवान महावीर की जन्म धात्री त्रिशला प्रियकारिणी से किसी ने निम्न प्रश्न पूछे जिनके उत्तर देते हुये उन्होने—अपनी विद्वता का परिचय दिया था। उन से पूछा गया—

● सत् पुरुष कौन होता है ?

'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थों को जो सिद्ध करके निर्वाण पाये वही सत् पुरुष है।

● और कायर कौन होता है ?

जो व्यवित मनुष्य जन्म पाकर भी धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, आदि पुरुषार्थों को सिद्ध न कर सके, निवार्ण प्राप्त न कर सके वही है कायर।

● मनुष्यों मे सिंह होता है क्या ?

हां हां क्यो नही। जो मनुष्य इन्द्रियों के साथ काम के हाथी को पराजित करके जमी हो जाये वहीं सिंह समान पुरुष है। और

जो पुरुष सच्चे धर्म को छोड़कर गलत आचरण करता है वह निम्न है।

● अच्छा, विद्वान कौन हैं ?

विद्वान वह है जो शास्त्रों को जानकर पाप में रत नहीं होता मोह मे नहीं फंसता। विषयो से पराजित नहीं होता वही विद्वान है। महिलाओं में श्रेष्ट विदेहदत्ता त्रिशला प्रियकारिणी की विद्वता इन्ही उत्तरों से झलकती है। भगवान का गौरव यथा स्थिर करने में त्रिशला प्रिया कारिणी का प्रयास निरन्तर बना रहा था।

मा का पद सदैव ही महानता का द्योतक होता है। और फिर त्रिशला प्रियकारिणी को तो अपने पद का उत्तरदायित्व बहुत पहले से हो गया था। एक रात जब प्रात:काल होने मे कई प्रहर बाकी थे तो रानी को सोलह सपने दिखाई पड़े।

इन सोलह सपनों में उन्हें निम्न रूप दिखलाई पड़े थे:—

(१) उन्नत चार दांत वाला हाथी
(२) पालतू सफेद बैल
(३) श्री और लक्ष्मी का दर्शन
(४) उछलता हुआ सिंह
(५) दो सुन्दरमदार के फूलो की माला
(६) उदस्त चन्द्र
(७) सूर्य
(८) दो मछलियां
(९) दो घन्टे
(१०) सरोवर
(११) समुद्र
(१२) सिंहासन

(१३) विमान
(१४) नागभवन
(१५) रत्नभन्डार
(१६) बगैर धुंये वाली आग

ये सोलह के सोलह सपने शुभ भविष्य के सूचक थे। स्वयं राजा सिद्धार्थ ने इन सपनों का फल इस प्रकार व्यक्त किया था:—

उन्नत चार दात वाला हाथी
— होने वाला बालक तीर्थंकर होगा !

पालतू सफेद बैल
— पालतू भाग्यशाली सफेद बैल का फल यह होना चाहिये कि बालक बहुत बड़ा धर्म प्रचारक बनेगा।

आकाश की ओर उछलता हुआ सिंह
— होने वाला बालक अतुल वीर होगा, पराक्रमी होगा।

श्री और लक्ष्मी का दर्शन
— इस बात का द्योतक है कि बालक का राज्य पर अधिकार रहेगा।

दो सुन्दरमदार मालायें
— इस बात का प्रतीक है कि होने वाला सुगन्धमय शरीर का धारक यशस्वी होगा।

चन्द्र और सूर्य का दर्शन
— इन बात को व्यक्त करते है कि होने वाला बालक मोह के अन्धेरे को समाप्त करके अज्ञान का नाश करेगा और ज्ञान का सूरज विकसित करेगा।

मछलियों का जोडा
— इस बात की ओर सकेत करता है कि वह अनंन्त सुख प्राप्त करेगा।

● दो घंटे

— दो घंटे का अर्थ यह है कि वह मंगलमय, सुन्दरतम होते हुये भी ध्यानी अवधित होगा।

● सरोवर

— सरोवर का दर्शन भगवान महावीर के जीवन के सबसे बड़े धर्म की ओर बोध करता था। जिस प्रकार सरोवर सबकी प्यास बुझाता है उसी प्रकार यशस्वी भगवान प्राणी मात्र की ज्ञान की प्यास को दूर करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं।

● समुन्द्र

— जिस प्रकार समुन्द्र अथाह होता है उसी प्रकार भगवान महावीर का ज्ञान भी कोई सीमा न रखेगा अर्थात ज्ञान का अपरिमित सागर।

● विमान दर्शन

— देव पुरुष ही विमानों का प्रयोग करते हैं। आने वाला महापुरुष भी स्वर्ग से विमान पर आ रहा है।

● नागभवन

— यूं साँप खजाने का पहरा देते है। मगर सपने में नागभवन का अर्थ यह है कि यह स्थान मुख्य तीर्थ में परिवर्तित हो जायेगा।

● रत्न भन्डार

— मानव जीवन के सबसे बड़े रत्न उसके गुण होते हैं भगवान महावीर सभी मानवीय गुणों से परिपूर्ण होंगे।

● बगैर धुंये के होने वाली अग्नि

— का यह फल है कि जिस प्रकार अग्नि सब कुछ नष्ट कर जलाती है उसी प्रकार भगवान महावीर सभी कर्मों का नाश करके परम पद प्राप्त करेंगे।

— इस प्रकार भगवान महावीर का आगमन सुनिश्चित सा हो गया था। शास्त्र कहते हैं कि उस समय दिशायें निर्मल हो गई। सुन्दर समीर बहने लगा अग्नि दक्षिण रूप में [illegible]

करने लगे। उस समय की सभी बातें शुभ थी। शुभ संकेत महान घटना का द्योतक होता है। फिर यहां तो साक्षात भगवान महावीर पधार रहे थे। धीरे धीरे सभी ग्रह नक्षत्र उच्च हो गये । चैत शुक्ला त्रयोदशी को उस साल सोमवार पड़ा। चन्द्रमा उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र पर आ टिका। आकाश निर्मल। ऋतुओं मे बसन्त का सौरभ और मस्त भंवरो से भरपूर फूलों की वर्षा…अचानक दम्भी बजने लगी। घन घोर गंभीर स्वर प्रसन्नता के आहुलाद में बदल गया।

राजरानी त्रिशला प्रिय कारिणी राज माता बन गई।

भगवान महावीर अवतीर्ण हो गये।

जैन शास्त्रों का कथन है कि भगवान महावीर के जैंन्म के समय चौथे काल दुखया सुखया में, ७५ वर्ष ३ मास शेष रहते थे। भगवान के जन्म का उत्सव स्वर्ग के देवेन्द्रों को खींच लाया। दस दिन तक उल्लासमय पर्व होवे रहे। दिये जलाकर ज्योतिमय पर्व मनाया गया। दान पुण्य और मुक्ति की लहर दौड़ गई। राज्य के समस्त वन्दीजन छोड़ दिये गये । कहा जाता है कि सोधर्म इन्द्र ने बाल प्रभु को सुमेरू पर्वत स्थित रत्नमयी पान्डूक नामक शिला पर ले जाकर अभिषेक किया । अनेक प्रकार के दिव्य वस्त्र पहनाकर निर्मल जल से तिलक किया । सुगंधित मालायें पहनाकर नमस्कार किया और भगवान का नामकरण वीर के रूप में किया।

ऐसा लगता था जंसे भगवान महावीर के आगमन के साथ प्रभू के साथ साथ मगल प्रभात हो गया था । और वास्तविकता भी यही थी कि उनकी स्तुति करते हुये दिव्य आत्माओ ने कहा था—'जिस प्रकार सूर्य की अनुपस्थिति मे कमल नही खिल सकते। उसी प्रकार आपके रूचिर वचनो के बिना तत्वबोध भी नही हो सकता। और तो और भव्य आत्माओं को भी ·वह तत्वबोध

कठिन है। आपकी अन्तरात्मा कठिनता से रहित है। आप महान् विभूति सम्पन्न ऐसे झिलमिलाते रत्न हैं, जिनके प्रकाश से प्राणीमात्र आलोकित होते हैं।

और वास्तविकता यह थी कि जब से भगवान गर्भस्थ हुये थे कुन्डलपुर के भाग्य ही खुल गये थे। घर में, नगर में, राज्य मे धन और धान्य की बेहद वृद्धि हुई थी। इस वृद्धि के कारण उनके पिता ने उन्हें जो नाम दिया वह था वर्द्धमान।

निरन्तर वृद्धि—

धन धान्य की।

सुख सम्पदा की।

क्यों न हो! सुदूर दक्षिण से आने वाला मलयनिल का झोंका पूरे वातावरण को सुरभिमय कर देता है। फिर भगवान महावीर तो तीर्थंकर थे। जब उनके पिता ने उनका नामकरण उत्सव मनाया होगा तो वह शोभा देखते ही बनती होगी। राजा के आंगन में सुबह से मृदंग वीणा डमरू लेकर गायक और नर्तक पधार गये थे। उन्होंने मधुर झंकार करना शुरू कर दिया था। धनधान्य से पूर्ण जब जनपद के वासियों ने सुना कि उनके राजा के यहां पुत्र हुआ है तो वे गाते बजाते पधारे। उस राजा के यहां जो बिना मांगे दान देता था। उस वक्त की शोभा वास्तव अतुल-नीय रही होगी जब प्रसन्नता से बधाई मंगल गाते ग्राम वासी कुन्डलपुर में प्रवेश कर रहे होंगे। ध्वजा पताका तोरण से सजा मंडप, मणी आदियों से शोभित, फूलों से आच्छादित गली रोड स्वच्छ और शोभा मार्ग पर मन लुभाने वाली सजावट। पधारे ग्रामवासी टकटकी बांध कर सब उस शोभा निरख रहे थे, जब प्रभु राजकुमार को उन्होंने देखा तो फूले नहीं समाये।

आह् क्या रूप था।

अपूर्व गोरा रंग था। बालक के गाल ऐसे जैसे बसन्त के फूल खिल रहे हो।

सूरज और चांद दोनों की छवि उसके चेहरे पर पड़ रही थी और ऐसी कोमल भावना बाल भगवान के चेहरे पर नाच रही थी कि देखने वाले मुग्ध हो गये। सौभाग्य से मंडित मुखचन्द्र से दृष्टि उठाने को मन ही नही करता होगा। और चकित से ग्रामवासी देखते होगे उस राजकुमार को जिसकी कमनीयता में फूल भी शरमा जाये।

उस वक्त राज माता के सुख का क्या ठिकाना।

प्रसन्नता से गद्‌गद् मन—

ओज और उछाह से भरा मन।

और उत्सव की अविरल शोभा—

चकित से देखते प्रजाजन विभोर हो उठे। वे अनुभव कर रहे थे संसार मे शान्ति भरे दिन आ रहे है। प्राणीमात्र के सुख के लिये चिंतित राजकुमार एक एक को ध्यान से देखते हुये सबका ध्यान केन्द्रित कर रहे थे।

बन्दी मुक्त हो गये।

प्रजाजन हर्षित हो उठे।

राज्य भर मे शान्ति। सब सुखी। धन धान्य की तो जैसे वर्षा हो रही थी। और दूर कुन्डलपुर से दूर हिंसा के त्रास मे दुखी आर्द पशु राह देख रहे थे। कब आयेंगे भगवान। वह मंगल प्रभात जो कुन्डल पुर मे आ चुका है उसे लेकर कब पूरे विश्व का अज्ञान दूर करेंगे। कब प्राणीमात्र की सुख की और शान्ति की राह बतलायेंगे।

उन्हें देखकर एक विद्जन गुणी ग्राहक ने कहा था–'हे राजन। आपका सुपुत्र बल कीर्ति और धर्म मे अपूर्व होगा। सारे संस्कार इसके लिये वृथा से हैं। क्योंकि लक्षण यह दीख रहे है कि यह बालक सिद्ध रुप है। इसके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है क्योंकि यह अपने ही ढंग की धर्म योजना चालू करेंगे।' जिस व्यक्ति ने घोषणा की थी वह एक साधू थे। सुविज्ञ। देखने से जानकार लगता था और वयोवृद्ध भी था।

ज्योतिषियों ने बालक के ग्रह देखकर घोषणा की थी कि यह बालक ऐसा प्रतापी भी होगा कि उसका यश चांद और सितारे सुनाया करेंगे। संसार की क्रान्ति लाने मे अग्रगण्य यह बालक तेजस्वी, पूज्यनीय और आदरणीय रहेगा।

और प्रभू भगवान महावीर ! जो इस संसार में भटके प्राणी मात्र को राह दिखाने, उनके दुखो की काली रात को मंगल प्रभात में बदलने के लिये आये थे वे सब कुछ जानकर जैसे मुस्करा रहे थे। मंगल प्रभात आ चुका था और धर्म के आडम्बर मे पिसते जीव उस मंगल प्रभात को देखने को लालयित हो उठे थे।

प्रभू जन्म, नामकरण आदि का समारोह मंगल प्रभात की मंगल ध्वनि के रुप में गुंजित और पवित्रता का सौरभ बिखेरता रहा···

३ | कुन्डलपुर के राजकुमार अध्यातम जगत के चक्रवृति सम्राट का पद प्राप्त करने के लिये क्रिया शील हुये……

भगवान का एक और नाम रखा गया।

सन्मति।

कहते है तब भगवान बाल अवस्था में ही थे कि उन्हे झुले या पालने मे लिटाया हुआ था। भगवान की परीक्षा के लिये कहो या शका निवारण के लिये आकाश मार्ग से दो ऋषि आ गये। नाम था सजय और विजय। उनको रिद्धी सिद्धी प्राप्त थी। उनके मन मे शकाये थी। भगवान के समक्ष शका निवारण के लिये आना चाहते थे सो आ गये। लेकिन यह क्या, भगवान के दर्शन मात्र से उनकी शंकायें दूर हो गई। दिव्य दर्शन का प्रभाव ऐसा ही होता है। उन्होने शका निवारण होते ही भगवान को एक नाम दिया। यह नाम था सन्मति।

वीर।

वर्द्धमान!

कवियो की दृष्टि मे भगवान का नाम पड़ा-'नाथ कुल नन्दन।'

ज्ञात पुत्र।

और माता से पाये नाम थे विदेह, विदेह दित्र, वैशालिक।

अतिवीर।

निग्रन्थ।

महतिवीर अर्थात् भगवान महावीर। परम तीर्थंकर, अन्तय

का रमय—महामात्य ब्राह्मण वसुधै बांधव। और वे नाम अनग है जिनसे साधारण भक्तों ने पुकारा था।

उनके पिता राजा सिद्धार्थ के विषय में जिन शास्त्रों ने स्पष्ट लिखा है कि सूर्योदय के बाद सिद्धार्थ राजा जब अवृत शाला में अर्थात व्यायामशाला मे जाकर व्यायाम करते थे। व्यायाम अर्थात् शरीर लोच, मास्तोलन। इसके बाद मल्लयुद्ध में जुट जाते थे! इस व्यायाम और मल्लयुद्ध से परिश्रम होना स्वभाविक है। परिश्रम कर लेने के बाद दो प्रकार के तैल यथा सहस्त्र पक (एक हजार द्रव्यों में पका तेल) और रात पक (सौ द्रव्यों में पका) तेल की मालिश कराते थे। यह तेल रुधिर प्रीतिकर, दीपन और बल की वृद्धि कराने वाला होता था व्यायाम के बाद वे स्नान करते थे। स्नान के बाद देवोंपासना भी होती थी। तदनन्तर दैनिक कार्य क्रम...

(कल्प सूत्र से साभार)

महावीर स्वामी का बाल्य जीवन का जितना उल्लेख मिलता है वह अनुकरण के योग्य है। आठ बरस की साधारण अवस्था में भगवान वर्द्धमान ने संकल्प लिया था।

वे जीवों पर दया करेंगे।

सदा सच बोलेंगे।

चोरी नहीं करेंगे।

ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे।

अपनी आकांक्षाओं को सीमित रखेंगे।

जीवों पर दया, सत्य भाषण, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य का पालन और आकांक्षायें सीमित रखने का अर्थ हुआ कि भगवान महावीर ने पांचों व्रतों का पालन करने का व्रत ले लिया था।

इसका अभिप्राय यह नही है भगवान महावीर का जीवन नीरस रहा। वे निर्भीक नही थे। उसकी निर्भीकता की चर्चायें तो देवलोक मे इन्द्र तक पहुच गई।

कहते है कि इन्द्र के दरवार मे एक दिन भगवान महावीर के परोपकार की चर्चा हो रही थी।

सब आनन्द से सुन रहे थे !

मगर एक देव इस चर्चा को सुनकर न रह सका। उसका मन ईर्ष्या से जल उठा।

बोला—'अभी जाना है।'

'कहा।'

'नीचे।'

उस समय महावीर वर्द्धमान अपने मित्रो के साथ आंख मिचोनी का खेल खेल रहे थे।

अचानक वाग मे एक विषधर प्रगट हुआ।

काला नाग।

फन उठाये।

क्रोध और क्षुभित विषभरी फुंकार से महावीर स्वामी के सखा मित्र भयभीत हो गये।

मगर भगवान महावीर तो जरा भयभीत नही हुये उन्होंने बड़े धैर्य से उस काले नाग को वस मे कर लिया।

भगवान महावीर के कोशल से पराजित हो देव को अपनी वास्तविकता बतलानी पड़ी और भगवान की यश गाथा गाता हुआ वह अपने धाम चला गया।

जो तीर्थंकर जन्म से होते हैं उनकी विशेषतायें कुछ और होती है, ये विशेषतायें संख्या मे दस है, जिनका उल्लेख शास्त्रो मे

इस प्रकार किया गया है—

१. शरीर मलमूत्र रहित।
२. पसीना लोप।
३. रक्त, मांस, दूध के समान।
४. वज्र वृभपताराच सेहनन।
५. समचतुरस्त्र संस्थान!
६. रूप अद्भुत।
७. सुगन्धित शरीर।
८. शरीर में १०८ लक्षरण।
९. अनन्तवक्ता।
१०. धीर गम्भीर वाणी।

स्वयं महावीर सात हाथ के सुन्दर बलिष्ट युवक के रूप मे अवतरित हुये थे। ऐसी यौवन श्री मिली थी कि राजा रानी अपने पुत्र को देखकर फुले नहीं समाते थे। युवावस्था को देख त्रिशला प्रियकारिणी की ममता ठिठक उठी।

मां की बेटे के प्रति दूसरी मनोकामना सुन्दर वधु होती है। स्वयं बड़े बडे राजाओं के घराने इस महान तीर्थंकर राजकुमार के लिये अपनी लाडलियां देने को प्रस्तुत थे। एक दिन शुभवसर देख कर पहले तो राजमाता ने अपने पति से मंत्रणा की फिर उनकी सहमती पाने पर वर्द्धमान से बोली—'बेटा, कलिंग देश के महाराज जितशुत्र अपने लाव लशकर सहित कुन्डग्राम आये हुये है। उनकी यशोदा नाम की राजकुमारी बड़ी सुन्दर है। हम उसे अपनी पुत्र वधु बनाना चाहते है।'

'क्या मां?'

'तात, यह हमारा अहोभाग्य है कि त्रिलोक्य पूज्य होने के

लिये संसार मे अवतरित हो गये है। वत्स, तीनों लोक के प्राणी तुम्हारे एक मात्र दर्शन के प्रति लालाइत रहते है। हम तो तुम्हें देखकर जीती है। हमारी एक इच्छा है वत्स उसे पूरी कर दो। तुम हमारे पुत्र हो। हम तुम्हे पुत्र वधु के साथ देखना चाहते है!'

'मां।'

'वत्स बोलो। इच्छा पूरी करोगे न हमारी।

'मा समय कहां है।'

'क्यों बेटा?'

'जरा घर से बाहर निकलो मा। देखो तो संसार की कैसी दशा है। एक दम दुर्दशा—न शील शेष है न धर्म। लोग काम क्रोध मोह लोभ और परिग्रह के वश हो रहे हैं। श्रवकों की बात छोड़ो साधू भी रागी के मोहमाया वश हो रहे हैं। सुन नही रही यज्ञ मे अति दुखी कटते पशुओ की पुकार। धर्म के नाम पर होने वाले ढोग, आडम्बर और दुखी जनो का हाहाकार।'

'मैं जानती हू वत्स। तुम अवश्य ही लोक का कल्याण करोगे मगर अभी तुम्हारी अवस्था ही क्या है? तुम पर यौवन शोभित है। यह ग्रहस्थ आश्रम मे प्रवेश करने की आयु है। यह अवस्था है जब श्रावक बनकर ग्रहस्थ धर्म का आदर्श उपस्थित करो।'

'मां।'

'वत्स।'

'आप कहती तो ठीक है।' मगर इस शरीर का भरोसा क्या? जब मुझे इस संसार मे रहना नही तो मैं क्यूं स्त्री मोह मे पडूं।'

'और मा।'

त्रिशला प्रियकारिणी ।

वह साधारण नहीं तीर्थंकर भगवान महावीर की मां थी ।

विदुषी ।

विदेह दत्ता ।

उनके सामने संसार के दुख दृष्टि गोचर होने लगे ।

अन्धा विश्व ।

अन्धा धर्म ।

स्वार्थ और आडम्बर ।

उन्हें मालूम था कि शील उठ चुका है ।

काम और वासना से पीड़ित निर्लज्ज होकर गलत आचरण में रत है । ब्रह्मचर्य का अस्तित्व मिट रहा है ।

और लोगों के मन मे यह धारणा घर करती जा रही है कि पाप को यज्ञ द्वारा दान द्वारा खत्म किया जा सकता है । पशुओं की बलि देकर लोग समझते थे कि उन्होने अपने पापो का मैल धो डाला है ।

राजकुमार सही कहते हैं । काय तो क्षण भंगुर है ।

वे राजकुमार के निश्चय पर अप्रसन्न नहीं हुई । वे जानती थी कि वह सही रास्ते पर चलने को उद्यत है । उन्होने राजकुमार के इस निश्चय का अनुमोदन किया ।

बेचारे कलिंग नरेश !

उनकी राजकुमारी यशोदा—

बेचारे निराश होकर लौट पड़े ।(*)

(*) कुछ शास्त्रो का (श्वेताम्बरीय शास्त्रों का) मत है कि भगवान महावीर का राजा समरवीर की कन्या यशोदा के साथ

व्याह हुआ था और एक पुत्री का भी जन्म हुआ था। मगर ऐसा लगता है कि श्वेताम्बरीय शास्त्र बौद्धों से ज्यादा प्रभावित होते दीख पड़ते हैं और उन्होने महावीर स्वामी का चरित्र गौतमबुद्ध के सद्रश्य रचने का प्रयास किया था। और वह तत्कालीन नहीं कभी समय बाद जोड़ा गया मालूम होता है। क्योंकि श्वेताम्बरीय शास्त्रो मे प्रमुख कल्पसूत्र और आचारांग सूत्र में इसका उल्लेख नहीं है। हुआ यह कि श्री भगवान के मोक्षगामी होने के बहुत वर्षों के अनन्तर विदेह देश मे घोर अकाल पड़ा था। फलतः उनके अनुयायी जो जीवित बच सके दक्षिण की ओर चले गये। उनके अनुयायियो के तितर बीतर हो जाने से धार्मिक सामग्री लुप्त हो गई और इस प्रकार जो अलग अलग लोक किदन्ती के आधार पर सामग्री प्राप्त हुई है उसमे अधिकांश इस बात की गवाही देते हैं कि भगवान बाल ब्रह्मचारी ही थे।

लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि भगवान निष्कर्म होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहे। वे इस प्रकार इस संसार में रहे जैसे कमल जल में रह कर भी जल से ऊपर रहता है। जब तक वे ग्रहस्थ में रहे, अपने पिता का कुशल सहयोगी की भांति राज काज मे हाथ बंटाते रहे। लेकिन वे हमेशा निश्चय करके सोचते रहे कि धन हमें सुखी नही बना सकता। स्वास्थ्य हो या शक्ति सुख उनमे नही है। सुख है केवल प्रकृति मे ! वही हमको सुख स्वास्थ्य, धन, दीर्घ आयु आदि वस्तुये प्रदान कर सकती है। मगर सच्चा सुख इनमे भी नहीं है।

संसार के सुख क्षण भंगुर हैं—

मगर आत्मिक सुख।

वही तो वास्तविक सुख है।

मान लीजिये साधारण पत्थर और बहुमूल्य हीरा दोनो ऐसे व्यक्ति के हाथ मे है जो नेत्र हीन है। वह उन दोनों की ज्योति नही देख पाता। उसके लिये तो दोनों ही बराबर है। अतः ज्ञान का होना आवश्यक है सम्यक ज्ञान जो आत्मा को परमपद पर लाने मे सहायता दे सके।

भगवान महावीर तो उसी सन्देश को घर घर पहुंचाने आये थे। वे उस पावन समय की तलाश कर रहे थे जब वे आत्मा का कल्याण करने के लिये इस जग से ऊपर हो उठेंगे। भगवान महावीर का जन्म ज्ञातृ क्षत्रीय कुल मे हुआ था। क्षत्रीय परम्परा मे जोखिम उठाना कर्तव्य समझा जाता था अतः जब भगवान महावीर ने तीस वर्ष की अवस्था में आकर अपने मन की व्यथा को समझा और विचार किया कि उनके तीन ज्ञान नेत्र हैं। वे आत्मज्ञानी है इसके बावजूद उन्होने तीस साल का अपना अमूल्य समय गृहस्थ के पचड़ो मे खो दिया। अब उन्हे बगैर देरी के महासंयम धारण करना होगा।

वक्त आ गया है—
जब वे घर द्वार छोड़ दें।
और त्याग, सयम और तपानुष्ठान को ग्रहण करेंगे।
राजकुमार को वैराग्य हो गया।
माघमास की दशमी। शुक्लपक्ष'''चढता हुआ चांद'''
शुभ घड़ी लेकर आ पहुंचा था।

राजकुमार महावीर अनुष्ठान के लिए प्रस्तुत हो गये। और भरी सभा में उन्होने सांसारिक सुख छोड दिये। परमसुख पाने के लिए उन्होंने सांसारिक सुख त्याग दिये।

ऊंचे ऊंचे राजप्रासाद, भव्य अट्टालिकायें, स्फटिक शिलायें

राजमहलो की रसभरी महिलाओ का हास परिहास ।

देहिक सुख ! सांसरिक सुख ! राजकीय वैभव छोड़ कर भगवान महावीर ने दीक्षा लीं।

सब जानते थे, कैसी विह्विलता का समय है ! कुन्डलपुर का राजकुमार विश्व का राजकुमार ! आलोक शिखा होने जा रहा है। वह सबको रास्ता दिखलायेगा। विश्व के प्राणी इसकी शरण में आकर दीक्षा ग्रहण करेगे। मगर फिर भी वियोग वेला वेचैन करने वालो ही थी। ज्ञान की शिखा को प्रज्वलित करने के लिये आत्म त्याग करना पड़ता है, और भगवान महावीर ने तो सर्वस्व त्याग कर दिया।

सबसे अधिक विह्वल हो रहा था माता का हृदय। विदेह दत्ता त्रिशला प्रिय कारिणी जानती थी कि भगवान् महावीर ने उनके घर जन्म लेकर उन्हे गोरवमण्डित किया है उन्हें अधिक दिनो तक रोका नहीं जा सकता।

और क्षत्रिय वंश की परम्परा है कि युद्ध के लिये वेटो को हंस हंस कर विदा करतो हैं ।

फिर उनका लाडला तो विश्वविजयी होने जा रहा है।

एक लोक कथा है कि एक राजा ने अपने समस्त शत्रुओ को जीत लिया। मगर उसके मन की लोप्सा भरी नही। उसने अपने मंत्री और सेनापति को बुलाकर कहा—'मन्त्रीवर' मैं अब दूसरे ग्रह मे अपनी सेना भेजना चाहता हू।' उन मन्त्री और सेनापति मे सबसे अधिक समझदार मन्त्री था। वह शांति प्रिय था और राजा की युद्ध नीति से अक्सर तंग आता था। बोला—'राजन ! दूसरे उपग्रह पर सेना भेजने की आवश्यकता नही हैं।'

'इसका अर्थ है कि कोई पराजित होने वाला शेष है ।'

'हां राजन !'

'सेनापति उस पर आक्रमण कर दो ।'

'राजन उस पर आक्रमण सेना नहीं करेगी ।'

'क्यों ?'

'उस पर आप आक्रमण करेंगे ।'

'इतना भयानक शत्रु है कि हमें आक्रमण करना होगा ।'

'जी ।'

'उसका नाम बतलाओ ।'

'राजन गरीबी को जीतना है । दुख को जितना है । बीमारी को जीतना है । मनुष्य को तो सब जीत लेते हैं । आप मनुष्यों की परेशानियों को जीतिये । सब दिक् विजय करते है आप भी दिक् विजय कीजिये । ऐसी की उस सीमा तक बीमारी न हो । दुख न हो । गरीबी न हो । कुआचरण न हो और अगर आप यह जीत सके तो मैं अपने आप को कृतार्थ मानूंगा । इतिहास आपका कृतज्ञ होगा ।

हिंसा की लड़ाई से अहिंसा का युद्ध सदैव भयंकर, संघर्षपूर्ण होता है मगर उसके परिणाम बड़े सुखद हैं । वह सम्राट निरन्तर जीवन भर इस लड़ाई को लड़ता रहा और वह लड़ाई कभी नहीं रुकी ।

भगवान महावीर भी ऐसे ही युद्ध के सैनिक बन कर जा रहे थे ।

कुण्डलपुर का राजकुमार विश्व के दुखों, प्राणीमात्र की परेशानियों के भवबन्ध को जीतने के लिये निकल रहा था । स्वाभाविक था कि उस वक्त लोग वन्दना करते, देव पुष्प वर्षा करते और इन्द्र उनके सम्मान में स्तुति गाते । साक्षी हैं जैन शास्त्र कि

दीक्षा के समय लोकान्तिर देव कुण्डलपुर आये थे और उन्हें नमस्कार करके बोले थे—'हे देव, हमारा प्रणाम स्वीकार करो। आप पूज्य है। आप इसलिये पूज्य है कि आप मोह रूपी कीचड़ में फंसे हुये जीवों को अपने ज्ञान का सहारा देकर बाहर निकालेंगे। आप नये तीर्थ का निर्माण करेंगे। इसलिये हे देव हम आपको नमस्कार करते हैं।

राजा और प्रजा।

सज्जन और विज्ञजन।

सभी इस समारोह मे उपस्थित थे। सभी कल्याणकारी उत्सव मे मौजूद थे।

युवक महावीर वैराग्य के लिये प्रस्तुत हुये।

और उस समय भगवान ने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी।

शास्त्रों में लिखा है कि जिस प्रकार सूर्य के आ जाने, से धूप मे आग तापने का मोह समाप्त हो जाता है उसी प्रकार भगवान महावीर को अपनी सम्पत्ति का मोह समाप्त हो गया था।

एक एक करके वे सभी वस्तुओ से वंचित हो गये।

फिर वे चन्द्रप्रभा नामक पालकी पर सवार हुये। पालकी में चारों ओर रत्न मंडित थे।

युवक महावीर के सम्मान मे हर्ष ध्वनि हुई।

विदा करने वालों के मन मे आह्लाद भी था और नेत्र जल से परिपूर्ण थे। आह्लाद इसलिये थे कि भगवान अपनी यात्रा पर जा रहे है। और नेत्र जल से परिपूर्ण इसलिये थे कि यह सुन्दर राजकुमार जो पूरे कुण्डलपुर के वासियो के जीवन मे समा गया

था। जो उनके सुख दुख का अंग बन गया था, जिसकी छवि देखकर वे जिन्दा रहते थे, वह छवि उनसे दूर जा रही है। जिसको वे अपने शासक अपने राजा के रूप मे याद करना चाहते थे वह उनसे दूर था।

फिर भी वे प्रसन्न थे।

जयनाद कर रहे थे।

चन्द्रप्रभा पालकी कुण्डलपुर के राजपथ से गुजरकर नागखन्ड वन उद्यान की ओर मुड़ गई।

विदा राज प्रसाद

विदा माता पिता

विदा राज वैभव

विदा नगर !

अब चन्द्र प्रभा पालकी उद्यान में पहुंच गई थी।

'भगवान पालकी से उतर पड़े।'

सामने की स्फाटिक शिला पर मणी जड़े थे। और उसके निकट ही था अशोक का सम्पन्न वृक्ष।

राजकुमार अब राजकुमार नही रहे !

उन्होंने अपने आभूषण उतारने शुरू किये।

आभूषण उतर चुके तो वस्त्र—

वे शिशुवेश में हो गये।

एक क्षण पूर्व का राजकुमार अगले क्षण राजाओं राजा, चक्रवृत्ति सम्राटों के सम्राट पद आसीन करने को उद्यत हो गया।

भगवान महावीर उस शिलासन पर विराजे। उनका मुंह उत्तर की ओर था। उन्होंने समस्त सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार

किया और महा प्रतिज्ञा की कि वे २८ मूल गुणों का पालन करने का प्रयास करेंगे।

अठाईस मूलगुण...

पांच महाव्रतो का पालन। पांच महाव्रत है:—

१. अहिंसा

२. सत्य

३. अस्तेय

४. ब्रह्मचर्य

५. अपरिग्रह

पाच महाव्रतो का पालन करने का वृत लेकर उन्होंने पांच समिति को स्वीकार किया था:—

(६. अगर चलना ही होगा तो वे चार हाथ की जमीन देखकर चलेंगे।

(७) केवल कल्याणकारी वचन बोलेंगे। बहुत संक्षिप्त और बहुत कम।

(८) समभाव से बगैर बुलाये भिक्षा बेला पर शुद्ध आहार करना।

(९) ज्ञान के उपकरण, अर्थात पुस्तको को देखभाल कर रखना उठाना।

(१०) मलमूत्र के लिये केवल वह स्थान प्रयोग किया जायेगा जो हरित न हो और जहां कोई और जीव न हो।

इन मूल गुणों के नाम है:—

(१) ईर्पा समिति

(२) भाषा समिति

(३) एषणा समिति

(४) आदान निक्षेपण समिति

(५) प्रतिष्ठापना समिति

इस उपरोक्त मूल गुण के बाद आवश्यक है—

—मनचाही वस्तु का स्पर्श न करना

—मनचाही वस्तु न खाना

—मनचाहे हाथ न देखना

—मनचाही गन्ध न सुघंना

—मनचाहा संगीत न सुनना !

इनके शास्त्रीय नाम है—

—इन्द्री विरोध, वैसे—

(११) स्पर्श विरोध।

(१२) रसना विरोध।

(१३) चक्षु विरोध।

(१४) घ्राण विरोध।

(१५) कर्ण विरोध।

संयम की सोलहवीं सीढ़ी का नाम है। सामयिक समभाव रखना। कोई मरे या जिये, कोई आये या जाये। मिले या बिछड़े, मित्रता निभाये अथवा शत्रुता, सुखी मन हो या दुःखी मन। भूख प्यास की बाधा हो या थकान। हर एक सम्मान रखना सामयिक कहलाता है। न राग न द्वेष।

अगले दो वन्दना स्वरूप मूल गुण हैं। जैसे—

(१७) तीर्थंकरों की स्तुति।

(१८) देव गुरु आदि को नमस्कार !

भगवान महावीर ने अन्य जिन मूल गुणों को पालने का व्रत लिया, वे इस प्रकार थे—

—अयोग्य का त्याग करेंगे ।

—एक नियत समय देह से ममता त्यागकर खड़े हो जायेंगे ।

—नियत अन्तरान के बाद उपवास रख कर अपने हाथो से अपने बाल उखाड़ना ।

—शरीर पर वस्त्र नहीं रखना ।

☆और निम्न त्याग ।

—वस्त्र आदि का ।

—स्नान का ! सुरमा आदि डालने का त्याग ।

—दातौन आदि का त्याग ।

☆शाव के विषय मे कहा गया है कि शुद्ध एकांत स्थान पर केवल एक करवट से लेटना ही आवश्यक है ।

☆अन्य दो भोजन के विषय में है । यथा—

—खड़े होकर अंजुली मे लेकर भोजन करना ।

—भोजन केवल एक समय करना ।

—भोजन करने के समय के विषय में भी निर्देश है । कहा गया है केवल एक समय भोजन करना है । इसका उपयुक्त समय है सूर्योदय से तीन घड़ी बाद और सूर्यास्त से तीन घड़ी पूर्व के बीच का समय । इन मूल गुणों के शास्त्रीय नाम है—

(१७) चतुर्विंशतिस्तव ।

(१८) वन्दना ।

(१९) प्रतिक्रमण ।

(२०) प्रत्याख्यान ।

(२१) कार्योत्सर्ग ।

(२२) केश लोच ।

(२३) अचेलक ।

(२४) अस्नान ।

(२५) क्षिति शयन ।

(२६) अदन्त धावन ।

(२७) स्थित भोजन ।

(२८) एक समय का भोजन ।

भगवान महावीर ने इन मूल गुणो का पालन करने का व्रत लिया और ढाई दिन के लिये उन्होने तुरन्त अनशन प्रारम्भ कर दिया ! ध्यान लीन होकर वे मूल गुणो को ग्रहण करने लगे ।

सोना कुन्दन हो रहा था । तप की अग्नि भगवान महावीर के अन्तर को पवित्रतम करने में जुटी हुई थी और कुन्डलपुर के राज-कुमार अध्यात्म के संसार के चक्रवृति सम्राट से बड़ा पद पाने के लिये कार्यशील हो गये थे ।

४

कुन्डलपुर के राजकुमार बने केवल ज्ञानी
प्राणों के दुःख दूर हुए : उज्जवल प्रकाश ज्ञान को पाकर सभी मन मधूर हुए

जय यात्रा शुरू हो गई। दूर हो गया कुन्डलपुर। नजदीक आता गया कूल्यपुर।

कूल्यपुर मे भगवान महावीर का प्रथम पड़ाव था। भगवान महावीर ने वही के कुल नायक से पहला आहार प्राप्त किया। वहा से भगवान दशपुर आये और दशपुर से शुरू हुई निर्जन पथो की यात्रा। दुरुह वनो से होकर जाने वाला मार्ग साधना के योग्य था। बारह वर्ष तक वे घनघोर जगलो मे रहकर तप करते रहे।

इस तप का नियम था। तीन दिन से अधिक वे एक जगह पर नही ठहरते थे। हा, जब वर्षा हो तो एक जगह रहकर वह चातुर्मास विताते थे।

पहला चातुर्मास उन्होने अस्थि गाम मे विताया था और फिर अगला चातुर्मास बीता था नालन्दा मे।

चम्पा पुरी।

पृष्ठ चम्पा।

आइये…इन चातुर्मासों के स्थानों के विषय में जरा विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लें। भगवान महावीर ने सबसे पहले अस्थि ग्राम को आकृत किया था। यह प्रदेश इसी से प्रसिद्ध हो गया।

कुन्डलपुर (बड़ा गांव) अथवा नालन्दा एक ही स्थान का नाम है। छटी शताब्दी में यहां शांतिनाथ जी का मन्दिर बनवाया गया, जिससे यह महा तीर्थ हो गया।

चम्पापुरी अंग देश की राजधानी थी। बिहार के भागलपुर से लगभग तीन मील दूर यह स्थान भगवान महावीर के कारण तीर्थ हो गया। आज जहां पर भागलपुर स्थित है, वहां से चौबीस मील दूर पत्थर घाट के पास आज भी एक गांव है। उसका नाम है चम्पापुर।

पृष्ठ चम्पा और भद्दिया भी यहीं निकट में कहीं होंगी। आल-भिका का वर्तमान नाम ऐरवा है। यह इटावा से सत्ताइस मील दूर स्थित है। राजगृह तो आज भी बहुत परिचित है। जब हम उन स्थानों का दर्शन करें जहां भगवान के वर्षा के चातुर्मास बीते थे तो उन कठिन प्रदेशों की बात भी याद आ जानी चाहिए जहां भगवान के साथ अन्याय हुआ था। इनमें प्रमुख है लाट। लाढ बंगाल के दीनाजपुर जिले में स्थित बाणगढ़ के पास है। यहां श्रेष्ठ वर को अपार कष्ट सहने पड़े थे।

शिकारी कुत्ते भगवान पर छोड़े गये।

घोर कष्ट कारी दिन।

अपमान।

लज्जा...

और फिर शारीरिक कष्ट ।

मगर भगवान महावीर थे मूलगुण के धारक ! उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे इन मूलगुणों की रक्षा करेंगे ।

और उन्होंने की ।

उन दिनों भारत मे आर्य और अनार्य दोनों एक दूसरे के प्रति अच्छा भाव नही रखते थे । और यह स्थान था अनार्यों का इसलिये 'वीर श्री' को अपार कष्ट सहना पड़ा । और इस कष्ट ने उन्हे मांज कर परिष्कृत कर दिया । अविचलित मन से जब भगवान उनके दिये कष्टों को सहते रहे तो आखिर वे भगवान की अहिंसा से प्रभावित हुये ।

आज तक उन्होंने सुना था कि हिंसा का जवाब हिंसा होता है । साधारण पशु को भी ठोकर मारने पर गुर्राने की आदत होती है । शिशु भी रोकर विरोध प्रकट करता है । मगर भगवान का समय ज्यों का त्यों जारी रहा । आखिर अहिंसा की जीत हुई । वे अनार्य जो कि भगवान को कष्ट पहुचाने मे ही अपना बड़प्पन समझ रहे थे धीरे धीरे भगवान के पराक्रम से परिचित हुये । उन्होंने भगवान के सामने अपनी पराजय स्वीकार की । महावीर स्वामी के चरणों मे गिरकर क्षमा मांगी ।

फिर भगवान महावीर मुड़े उत्तर प्रदेश के गोरखपुर की ओर और श्रावस्ती होते हुये आये कौशाम्बी ! कौशाम्बी की धरती आज भी सती चन्दना के उद्धार की कथा कहती है । और इस बात का संकेत करती है कि किस प्रकार भगवान महावीर ने सती चन्दना का उद्धार किया ।

कौन थी यह चन्दना ।

जरा स्मृति टटोलिये, राजा चेटक की सबसे छोटी कन्या; महारानी राजमाता त्रिशला प्रिय कारिणी की सबसे छोटी बहन। सारे विश्व की घटनायें कर्म प्रस्थान होकर चलती है। एक परिवार में जन्मी त्रिशला, उसी मे मृगावती और उसी परिवार की राज दुलारी थी चन्दना। सुन्दर सुकुमार! विधाता ने ऐसा रूप दिया था कि कल्पना लजा जाये। छोटी थी इसलिये अधिक लाडली भी थी। मगर संयमी थी और संयम के कारण चेहरे पर अपूर्व गौरव झलकता था।

वसन्त के मधुर दिन थे।

फूल खिल रहे थे। भौरे गुनगुना रहे थे। और चन्दना उन फूलो की क्यारियों मे प्रफुलित सी घूम रही थी।

एक विद्याधर ने देखा।

फूलो मे फूलो की रानी घूम रही है—यह देखकर विद्याधर का मन डोल उठा।

उसने चन्दना को उठाया और उड़ चला आकाश मे।

कहां चन्दना कहां वह?

और मार्ग भी आकाश का। बेचारी क्या करती। पर विराग अपने शील और संयम को बचाकर रख सकती थी। जैसे तैसे उसी शील और संयम को उसने बचाकर रख लिया। वह अपने धर्म पर कायम रही। विद्याधर जबरदस्ती उतरा। और मन करे इससे पूर्व उसकी विद्याधरी आ गई। परवश होकर वह उसे घोर घने जंगलों मे छोड़ गया।

घोर घने जंगल, पशुओं से भरा बियाबान। कोमलांग चन्दना के [illegible] था और [illegible] न था। बेचारी [illegible] हो गया। [illegible]

दी । और उसे लेकर अपने सरदार के पास पहुंचा । चन्दना सोचती थी यह भोला भाला भील उसकी नैय्या पार लगा देगा । और भील भी समझता था कि सरदार तो राजा होता है । राजा प्रजा का अहित नहीं कर सकता है । मगर भील सरदार तो चन्दना को देख कर ही फिसल उठा ।

उसका रूप भील सरदार को सहन नहीं हुआ ।

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'चन्दना ।'

'रानी बनोगी ?'

'किसकी ?'

'मेरी—'

'तेरी ?'

'हां ।'

'शर्म नहीं आती बकवास करते !'

'बकवास नहीं, चन्दना रानी—'

'खबरदार जो मेरा नाम अपनी जुबान पर लाया तो ।'

'क्यों ?'

'इसलिये कि मैं सती हूं—'

'ओह !'

'हां !'

'मैं तुझे त्रास दूंगा ।'

'सहलूंगी ।'

'तेरी चमड़ी उधेड़ दूंगा ।'

'फिर क्या होगा—'

'तुझे मरने पर मजबूर कर दूंगा ।'

'फिर ?'

'तुझे मार दूंगा।'

'हर आदमी को मौत से मरना ही पड़ता है। सुनी नहीं वह भावना !'

'क्या ?'

'राजा रानी छत्रपति हाथिन के असवार। मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार—'

'हूं—'

उस भील सरदार ने चन्दना सती को त्रास देने में कोई कसर नही छोड़ी। मगर चन्दना एक शीलवती नारी थी। उसे मरना स्वीकार था, मगर धर्म से वेधर्म होना स्वीकार नहीं आखिर तंग आकर वह भील सरदार उसे कौशाम्बी के चौराहे पर ले आया।

उन दिनों दास प्रथा थी।

मुद्राओं में नारी बिकती थी। चौराहे पर बोली लगती थी। बेचारी चन्दना उसकी भी बोली लगाई गई।

तभी वहां धनवान नगर सेठ गुजर रहे थे। चन्दना का दुःख उनसे देखा न गया।

उन्होंने उसका मूल्य चुकाया और घर ले आये।

धर्म की बेटी बनाकर उसका लालन पालन किया। मगर उनकी पत्नी चन्दना के रूप को देखकर ठगी सी रह गई। क्या दुनिया में इतना रूप भी होता है। हाय, सेठ कहीं इसे 'प्यार' तो नहीं करने लगे हैं।

अगर ऐसा हुआ तो—

एक दिन चन्दना इस घर की सेठानी होगी और मैं……नहीं

ऐसा नही होगा।

चन्दना दासी है दासी रहेगी।

घर तो हमेशा ही घर वाली के संरक्षण में चलता है। फिर यह तो मात्र दासी है। सेठानी ने उसे अपने ढंग से सताना शुरू कर दिया।

बेचारी चन्दना—

कोसती थी उस घड़ी को क्यों फूलों के प्यार ने उसे मोहा। क्यो वह अकेली उद्यान में घूमने आई। वह राजा चेटक की बेटी। उसकी बहन मृगावती इसी कोशाम्बी नरेश की रानी है। लेकिन भाग्य तो सबका जुदा जुदा है। उसी जुदा भाग्य के कारण तो उसे यह दुख उठाने पड़ रहे है।

भगवान महावीर उन दिनों कोशाम्बी में पधारे हुये थे। उस रोज उन्होने नियम किया था कि यदि मुंड सिर से बंधन में जकड़ी कोई युवती छाज मे आहार देती हुई मिलेगी तो वे ग्रहण करेंगे अन्यथा नही।

भगवान महावीर आहार लेने आ रहे है, इस समाचार का गुहार भगवान महावीर के जयजयकार से हुआ।

महावीर स्वामी की जय!

इस जय निनाद को सुनकर चन्दना जो सूप (छाज) में कोदो के दाने लिये खड़ी थी। अनायास सामने आ गई। भगवान की मधुर छवि देखकर उसने मन ही मन नमस्कार किया। उसे क्या पता था कि आज उसका भाग्य खुल रहा है। स्वयं महावीर स्वामी उससे आहार लेने आ रहे हैं।

श्री वर्द्धमान पुराण ने इस घटना का उल्लेख करते हुये लिखा है :—

सो वह तक छोड़ बन कोद, तन्दुल खीर गयी अनुमोद।

भारी पात्र हेमामय सोय, परम तनै फल वहाँ न होय।

भगवान महावीर जब उस आहार को लेने के लिये गये तो वह कोदों के दाने खीर बन गये।

भगवान महावीर ने दासी से फलाहार ग्रहण किया।

ठीक उसी प्रकार जैसे भगवान राम ने भिलनी के झूठे बेर खाये थे। भगवान श्री कृष्ण ने विदुर के घर साग पात खाया था। और जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम ने अहिल्या का उद्धार किया था, इसी प्रकार अनायास ही चन्दना का उद्धार हो गया।

जिस दासी के हाथ का आहार प्रभु ने स्वीकारा था, उसकी कीर्ति पूरे नगर में फैल गई।

कौन है वह देवी ?

स्वयं रानी मृगावती उससे मिलने आई।

उसे बधाई देने आई कि उसे गर्व है कि उसके राज्य में ऐसी दासियां भी हैं, जिनसे भगवान आहार लेते हैं !

मगर रानी मृगावती ने देखा तो देखती रह गई।

अरे यह तो वही—

उसकी छोटी बहन !

चेटक की राजदुलारी।

उसकी प्रिय बहन, चन्दना। अनायास रानी मृगावती की आंखों में आंसू आ गये।

उसकी बहन ! इस हालत में !

रानी मृगावती अपनी बहन को महलों में ले गई !

रानी चन्दना की कहानी यहाँ खत्म होती है। मगर भगवान महावीर की तपस्या की कहानी कहाँ खत्म है। आगे पढ़िये ?

अनेक पल आये उन परीक्षाओं की घड़ी के जब भगवान ने अपने को स्थिर किया। भगवान महावीर का रूप अतुलनीय था। उनके रूप को देखकर लोग चकित हो जाते थे। एक बार जब वे गंगा की रेती से गुजर रहे थे तो पुष्य नामक ज्योतिषी ने उनके पैरों की थाप से अनुमान लगाया कि गुजरने वाला व्यक्ति जरूर कोई चक्रवृति सम्राट होना चाहिये। मगर जब वह आगे बढ़ा तो उसने देखा कि अशोक वृक्ष के नीचे भगवान प्रभू खड़े थे।

वह और उनके निकट आया।

भगवान के माथे पर मुकट चिह्न थे।

भुजाओं मे चक्र चिन्ह।

तो क्या शास्त्र झूठें हैं। मेरा सामुद्रिक शास्त्र झूठा है।··· फिर अनायास उसे जब वास्तविकता का आभास हुआ तो वह चकित रह गया। यह तो २४ वें तीर्थंकर थे। वे तीर्थंकर— जिनका मांस और रूधिर दूध की तरह होता है। सास लेने से कमल की गन्ध चारो ओर फैलती थी। शरीर मे न कोई रोग हो सकता है। पूरा शरीर पसीने और मलमूत्र आदि से रहित था। ऐसे व्यक्ति के सामने चक्रवृति सम्राट क्या!

आखिर पुष्य को समझ आती गई। उसने अपनी भूल सुधारी और भगवान को प्रणाम करके चले गये।

ऐसे रूपवान मे कामवासना न हो ऐसा हो ही नहीं सकता। इस बात की परीक्षा लेने के लिये एक बार स्वर्ग की देवागनाये उतर आई।

वे भगवान की परीक्षा लेना चाहती थी।

जानना चाहती थी कि कामदेव से भी सुन्दर राजकुमार वर्द्धमान मे रति का अभाव कैसे हो सकता है।

बसन्त बिखरा था। भगवान सुन्दर उद्यान से गुजर रहे थे। उन देव कन्याओं ने आकर भगवान के सामने नृत्य करना शुरू कर दिया।

अनुपम नृत्य······

अनोखा शृंगार और

अन्तर में समा जाने वाला कोमल स्पर्श से भरपूर हाव भाव। अजीब दृश्य था। भगवान महावीर के समक्ष वे नाच रही थीं। इतरा रही थीं एक एक करके सारे वार किये गये।

नृत्य···

शृंगार !

काम कटाक्ष।

आलिंगन का प्रयास।

शरीर का प्रदर्शन।

बेशर्म से बेशर्म हरकत। पत्थर से पत्थर हृदय का योगी खिंच जाये। मगर भगवान महावीर तो बाल ब्रह्मचारी थे। उनके सामने ये सब निरर्थक था। उन्होंने तो काम को जीतकर काम-विजयी की पदवी पाई थी। वे देव बालाएँ उन्हें रिझाकर आखिर हताश हो गईं और असफल होकर लौट गईं।

भगवान महावीर राजकुमार थे ! वे कुण्डपुर के राजा के पुत्र। मगर इस बात का दम्भ उन्होंने कभी नहीं उठाया। वे यह बतलाना गलत समझते थे कि वे राज पुत्र हैं। मिलनसारी, एकदम कम बोलना उनके स्वभाव का अंग था। वे बहुत कम बोलना चाहते थे। और यह तो चाहते ही नहीं थे कि कोई व्यक्ति उनका सम्मान करे।

एक बार का जिक्र है भगवान कुमार [illegible]

खेत के पास ध्यानस्थ हो गये। निकट के खेत में एक किसान खेत जोत रहा था। जब शाम हुई तो उसे भैंसे दुहने के लिये घर जाना आवश्यक लगा। उसने बैल भगवान महावीर के निकट छोड़ दिये और स्वयं गाव की ओर हो लिया।

उसके जाने के बाद बैल स्वतन्त्र हो गये।

वे न जाने कहा चले गये।

भगवान महावीर तो ध्यानस्थ थे। उन्हे यह जानकारी नहीं थी कि बैल थे भी। और थे तो गये कहा?

किसान आया।

बैलो के विषय मे पूछा। भगवान का उत्तर उसे प्रसन्न नही कर पाया।

वह सारी रात जंगल में अपने बैल तलाश करता रहा।

थका मादा जब वह सुबह खेत मे लौटा तो उसने देखा भगवान महावीर तो ध्यानस्थ है और उनके चरणो मे वे दोनों बैल बैठे हैं। वह सारी रात इन्ही बैलो को ढूंढता फिरा था, इस कारण उसके गुस्से का ओर छोर न था। वह सोचने लगा यह साधू तो पाखंडी है। इसने मुझसे छल किया है। मैं इसे मजा चखाता हू।

और उसने भगवान को ताड़ना देना शुरु किया।

भगवान महावीर न तो पहले कुछ बोले थे न अब।

जैनशास्त्र कहते है कि यह अत्याचार इन्द्र से न देखा गया। वह दौड़े हुये आये और बोले, 'अरे यह कैसा घोर अन्याय कर रहे हो। क्या तुम नहीं जानते यह कौन है।'

'जी नही।'

'मूर्ख' यह तो राजकुमार वर्द्धमान है जो अपना सर्वस्व त्याग

कर साधू हुये हैं। अगर इन्हें पाखन्ड ही करना होता तो भला ये राज महल छोड़कर ही क्यों आते।'

किसान को जब इस स्थिति का पता लगा तो वह बड़ा खिन्न हुआ। उसने भगवान से क्षमा याचना की। मगर भगवान ने उसे त्रास के अवसर पर भी नहीं कहा कि वह मूर्ख है। उन्हें भला क्या पड़ी जो वे उसके बैल मे दिलचस्पी लेंगे।

क्योंकि भगवान यह भूल चुके थे कि उनका अतीत क्या रहा था। वे स्वयं ऐसे हैं, वे राजवैभव भोगते आये है, यह सब भोगना ही व्यर्थ था। और इससे उनके ध्यान मे अन्तर पड़ता था।

बारह वर्ष तक भगवान मौन साधना करते रहे। इस बीच उन्होंने अहिंसा की शक्ति के नये नाप दण्ड उपस्थित किये।

यह बारह साल भगवान ने घूम फिर कर बिताये थे, और घूमने फिरने में जहां अच्छे लोग मिले थे। वहां दुष्टों की संख्या भी कम नहीं थी।

भगवान महावीर को दुष्ट लोगों ने कम उपसर्ग नहीं दिये। एक बार भगवान उज्जैन नगरी में आ पहुंचे। और वहां के अति मुक्तक श्मशान में प्रतिमा योग धारण करके खड़े हो गये। पशु बलि के लिये विख्यात वहां महाकाल की पूजा होती थी। श्मशान में भव नामक रुद्र पुरुष का वास था। इस जगह भगवान को पाकर उसे घोर आश्चर्य हुआ साथ ही उनकी अहिंसा भावना के प्रति उसका क्रोध भी दर्शनीय था। वह तांत्रिक स्वभाव का था और उसके योग की महिमा साधारण ज्ञात न थी। वह रुद्र भी क्रियाओं का ज्ञान रखता था और उसने अपनी [illegible] में कोई कसर उठाकर नहीं रखी मगर भगवान जानते थे कि उन्होंने जो पद ग्रहण किया है, वह साधना और तप से [illegible]

कुछ नहीं है। उनके कर्मों का नाश हो रहा था। मोहनीय कर्म क्षीण हो रहा था। इस कर्म के क्षीण होते ही उनमें समतारस हो गया था। सुख दुख उनके लिये सब एक समान होता था।

अगर कोई साधारण व्यक्ति होता तो उसे असहनीय पीड़ा का अनुभव होता मगर उन्हे ऐसा नही हुआ। वे तो वरनीय कर्म को निस्तेज कर रहे थे। अतः साधना और त्याग के पथ पर वे सब कुछ सह गये और उफ तक न की।

हर रात का सवेरा होता है।

हर दिन की शाम होती है।

हर आदि का अन्त होता है।

आखिर वह भव नाम का रूद्ध भी अपनी करनी करते करते थक गया।

उसे अपनी भूल अनुभव हुई।

अहिंसा ने हिंसा पर विजय पा ही ली।

उसने अपनी पराजय स्वीकार की।

अपनी खड्ग छोड़ कर उसने भगवान के चरणों में महावीर स्वामी का जयघोष किया।

यह अहिंसाव्रत धारी बना और भगवान महावीर का केवल ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो गया। लेकिन किसी भी दृष्टि मे जनहित को वे भुला नहीं पाये अस्थि ग्राम मे जब उन्होंने पहला चातुर्मास व्यतीत किया तो वहा नर बलि लेने वाले यक्ष की पाशविक मनोवृति को समाप्त कर दिया।

यक्ष हिंसा मे विश्वास करता था।

मनुष्यो की बलि लेता था। भगवान महावीर ने अपने अद्वितीय सहनशील शान्त स्वभाव से उसका हिंसामुख बन्द कर दि

उसकी क्रूरता मिट गई। जो जनता को त्रास देने में सानी नहीं रखता था।

वह अब उनको अभयदान देने लगा।

इस प्रकार की घटना का उल्लेख श्वेताम्बरी शास्त्रों में मिलता है। यहां की जनता और नगरवासी एक सांप से बड़े दुखी थे।

भगवान महावीर वहां गये।

उन्होंने उस विषैले सांप का विष समाप्त करके लोगों को अभयदान दिया।

महावीर स्वामी की इस कठोर साधना का विषय था अभय दान। प्राणी मात्र का कल्याण और उस कल्याणकारी दृष्टि ने उन्हें उत्तम पावन एवं पूजनीय बना दिया था।

उनका ज्ञान केवल मस्तिष्क की उपज न था। उनकी तपस्या मात्र दिखावा न था। वे हठ योगी की भांति शरीर को उल्टा सीधा कष्ट देने में विश्वास नहीं करते थे। वे तो अपने शरीर को इस प्रकार साध लेना चाहते थे कि साधारण अथवा असाधारण घटना उनके ज्ञान को छिन्न भिन्न न कर सके। और सबसे बड़ी बात यह थी कि, उनकी अहिंसा हिंसा को अहिंसा की तरफ ढालना चाहती थी, और [illegible] का समन्वय था। इसी से भगवान महावीर के आगमन की राह [illegible] देखी जाती थी।

५

भगवान महावीर की जय यात्रा महावीर संघ : महावीर आर्यिका संघ और महिला उत्कर्ष दलित प्राणियों के अभ्युदय की महान गाथा,

और आखिर तपस्या का परिणाम दृष्टि गोचर होने लगा। बारह साल की कठोर साधना ने भगवान महावीर की आत्मा को महान कर दिया था। उन्हे केवल ज्ञान और सर्वदर्शता प्राप्त हुई बारह साल की घोर तपस्या के बाद एक दिन भगवान महावीर बिहार के जम्भिक गांव की ओर आ निकले। यहा पर मनोहारिणी वन राशि को भेद कर ऋजुकुला नदी बहती है। भगवान महावीर उसी नदी के किनारे एक गहरे साल वृक्ष की छाया मे पड़ी शिला पर विराजमान थे। इस वक्त उनकी सम्पदा थी—अठारह हजार शील, चौरासी लाख गुण और तीन धर्म ! जिनके प्रताप से उनका जय घोष प्रारम्भ हो गया। मोहनीय, दर्शनावारणी, ज्ञानवरणी और अन्तराय कर्म का विनाश होते ही उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हो गया। और इसके तुरन्त बाद भगवान महावीर ने अहिंसा से हिंसा पर विजय करना शुरू कर दिया। वे जम्भिक से विपुलाचल पर्वत की ओर आये और वहा उन्होने प्रथम प्राप्त की।

उन दिनो मगध में जो लोग रहते थे वे इस बात मे विश्वास नही करते थे कि पशुओ को धर्म के लिये मारा जाये तो कोई अनर्थ होता है। वे पशुओं की बलि देते और इसमे कोई बुराई

नहीं समझते । उनका प्रमुख व मुखिया शांडिल्य । वह [illegible] प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति था । उसके दो पत्नियां थी एक का नाम था सुलक्षणा और दूसरी का नाम केसरी था ।

सुलक्षणा से उसके दो पुत्र हुये जिनके क्रमशः नाम इन्द्रभूति और अग्नि भूति थे । दूसरी पत्नी से एक पुत्र जन्मा इसका नाम था वायुभूति । ये तीनों भाई बहुत बड़े विद्वान थे और उन्हें अपनी विद्या का बड़ा गर्व था ।

इन्द्रभूति अपने भाईयों में सबसे अधिक योग्य था । [illegible] सम्पन्न करके वह यथेष्ट कीर्ति प्राप्त कर रहा था । इन्द्र जानते थे कि यह एक योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्ति है, यदि इसे किसी प्रकार पराजित किया जा सके तो यह भगवान का [illegible] सिद्ध होगा ! इसलिये उन्होंने एक तरकीब निकाली । एक दिन जब इन्द्रभूति कहीं यज्ञ कराने जा रहे थे । तब ये रास्ते से गुजरे तो उन्होंने अपार जन समूह को जाते हुये देखा ।

कहां जा रहे है यह लोग ?

शायद उनके यज्ञ में शामिल होने जा रहे है मगर जब वे इनके यज्ञ स्थल पर न रुके और आगे बढ़ गये । इस प्रकार जन समूह में से किसी को भी न रुकते पाया तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ।

पूछने पर पता चला कि भगवान महावीर को केवल ज्ञान हो गया है और वे समवसरण में [illegible] रहे हैं ।

भगवान महावीर…

[illegible]

गौतम के निकट आकर कहा—'महाराज मैं आपके समक्ष अपनी एक समस्या लेकर आया हूं। घटना इस प्रकार घटी कि मेरे गुरु देव ने मुझे एक श्लोक तो सुना दिया। मगर अर्थ नही सुना पाये इससे पूर्व वे ध्यानस्थ हो गये। मैंने आपकी विद्वता की ख्याति सुनी है। क्या आप बता सकेंगे।'

'अवश्य !'

'आपका बड़ा उपकार होगा।'

श्लोक क्या है !'

इन्द्र ने निम्न श्लोक कह सुनाया :

त्रैकाल्यं द्रव्यपटंक सकलगणितगणाः सत्पदार्थानिवेव,
विश्वं पंचस्तिकाय व्रत समितिविदः सप्ततत्वानि धर्मः
सिद्धे मार्गस्वरपं विधि जनित फलं जीवष्टकामलेश्या,
एतान्यः श्रद्दाति जिनवचनरतो युक्तिगामी सभव्यः !!

और पूछा आप बताइये :—

त्रिकाल कौन से हैं ? छै द्रव्य क्या है। पंचास्तिकाय क्या होते हैं। तत्वो से क्या मतलब है ? छैः लेष्यायें क्या है।

अब तो इन्द्रभूति चक्कर मे पड़े।

उन्हे तो कुछ भी पता न था।

'तुम्हारे गुरु को मालूम है ?'

'अवश्य ?'

'तो चलो आपके गुरु से ही पूंछे।'

भगवान पराजित है।'

'हां ! और यदि तुम्हारे गुरु ने इसका समुचित समाधान किया तो मैं भी उनका शिष्य हो जाऊंगा।

भगवान महावीर ने उनकी शंका का निवारण कर दिया।

भगवान महावीर ने अपने प्रवचन में कहा—

आत्मा रूप रस गंध हीन है। उसे किसी ने नहीं देखा। परन्तु हर मनुष्य उसके अस्तित्व से परिचित है।

पंच भूत हैं: पृथ्वी, जल, वायु अग्नि और आकाश।

विश्व में जो वस्तु है उसका कभी नाश नहीं होता और जो नहीं है उसका कभी कोई अस्तित्व नहीं है।

देह मिथ्या है। नाशवान है। शरीर पुद्गल है और आत्मा जीव। जब हम किसी मृत व्यक्ति का दाह संस्कार करते हैं तो पुद्गल पुद्गल रहता है। शरीर का किसी न किसी रूप में अस्तित्व रहता है मगर आत्मा दूसरा शरीर धारण कर लेती है।

सात तत्वों का निरूपण करते हुए भगवान महावीर स्वामी ने बतलाया कि सात तत्व इस प्रकार हैं :—

और अशुभ कर्म कर रहा है जो पूर्व जन्म मे कर्म किये उनका भोग इस जन्म मे मिल रहा है और जो इस जन्म में कर्म किये जा रहे हैं वे अगले जन्म मे मिलेगे। जीव इन कर्मो के अनुसार ही सुखी और दुखी है।

और अशुद्ध अवस्था मे निम्न गतियों में भ्रमण करता है। जैसे :—

(क) देव गति

(ख) मनुष्य गति

(ग) नरक गति

(घ) त्रियंच गति

राग द्वेष के कारण दुख उठाता है। वह चार कषायो के वशी भूत होकर तीन प्रकार से अपने ऊपर कर्मो का मैल चढ़ाता है तीन क्रियाये इस प्रकार है :—

(१) मन

(२) वचन

(३) काय

चार कषाय को, जीव को गतियो मे भ्रमण करने पर वाध्य करती है उनके नाम इस प्रकार है :—

(क) क्रोध

(ख) मान

(ग) माया

(घ) लोभ

इन कषायो से आठ प्रकार के कर्म आकर चिपट जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे तेल से भरे शरीर पर धूल के कण आकर चिपट जाते है, उसी प्रकार जो जीव कषाय मे रत रहता है अर्थात्

क्रोध मान माया लोभ में फंसा रहता है उसके पास जिस भांति प्रकार के कर्म आकर एक निश्चित समय के लिये लग जाते हैं। कर्मों को वह पुनः अच्छे कार्य करने पर मिटा जाती है और अशुद्ध आचरण करने पर और अधिक हो जाती है। इन स्थितियों को क्रमशः निम्न नाम देकर पुकारा जाता है—

(अ) आस्रव

(ब) बंध

(स) संवर

(द) निर्जरा

(य) और मोक्ष

कर्म संख्या में आठ होते हैं और उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) दर्शना वर्णी

(२) ज्ञान वर्णी

(३) मोहनीय

(४) अन्तराय

(५) वेदनीय : साता वेदनीय और असाता वेदनीय

(६) नाम

(७) गोत्र

(८) आयु

इन कर्मों के नाश का नाम ही मोक्ष है।

जाने वाला था।

भगवान महावीर ने उन्हे अधिक व्याख्या करते हुये बतलाया कि जिस प्रकार गन्दे तलाव को स्वच्छ करने का सबसे बड़ा तरीका यही है कि गन्दा पानी उसमे जाना रोका जाये। अतः पहले कर्मों का आना रोक कर केवल शुभ कर्म किये जाये ताकि प्राणी मोक्ष की तरफ अग्रसर हो सके। अतः पंचास्ति क्या है, इसका विवेचन है कि निम्न पाच पचास्तिकाय कहलाते है, यथा :-

(१) पुदगल
(२) धर्म
(३) अधर्म
(४) आकाश
(५) जीवन

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, जीवन जीव से पाचो अजीव हैं ऐसी सुन्दर व्याख्या सुनने पर इन्द्रभूति अपने भाईयो समेत भगवान की शरण मे आया और उसी जन्म मे अपने कर्मों का फल भोग कर मोक्ष को प्राप्त हो गया।

भगवान की व्याख्या से लोगो के मन के और मस्तिष्क के बंद कपाट खुल जाते थे।

तभी तो स्वामी सामान्तभद्र आचार्य ने उसके विषय मे कहा था :—

वीर, प्रभू तुम महावीर
पद रज पाकर वीर तुम्हारा
सौभाग्य शाली हुई वसन्धुरा
बना तीर्थ वह भाग घोर
दोषों का उपशम···

ज्ञान विकास,
हुआ हिंसा का सर्वत्र नाश ।
अहिंसा व्रत और अभय दान सहित,
विहार हुआ यूं गुण पूर्ण और दोष रहित
जैसे पर्वत–मिति का लिये अवहान
करता है, शुभ लक्षणात गज मत दान ।

आज जो विहार है उसे विहार नाम देने का श्रेय भगवान महावीर को है । भगवान महावीर ने जिस जिस जगह सबसे अधिक अपने विहार स्थापित किये वह समूचा प्रदेश विहार प्रदेश बन गया । किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनका कार्य-क्षेत्र केवल विहार तक सीमित था । बल्कि काशी, कोशल, कौशल्य, कुसंध्य, अश्वष्ट, साल्व, त्रिगर्त, पंचाल, भद्रकार, पाटच्यक, भोर, मत्स्य, कनीय, सूरसेन, व्रकार्थक, कलिंग, कुरूजांगल, कैकय, आत्रेय, काम्बोज, वाल्हीक भवन, श्रुति, सिन्धु, गांधार, सूरभीरु, दशेरूक, वाडवान, भारद्वाज, तार्ण कार्ण, प्रच्छाल, आदि प्रदेशो मे जनता को धर्म की ओर अग्रसर किया । अगले तीस वर्ष भगवान ने जनता के हित में व्यतीत किये और एक महामात्यक आदर्श से भरपूर पूजनीय तीर्थकर के रूप मे उनके अनुयायियो की संख्या बढती चली गई । आमतौर से दो प्रकार के अनुयायी भगवान की शरण आते थे :—

(१) ग्रहत्यागी
(२) ग्रहवासी

ग्रहत्यागी भगवान महावीर के साथ साथ भ्रमण करते थे । और इस प्रकार महावीर स्वामी के संरक्षण में विकास पाने वाले में चार प्रकार के सदस्य थे । जैसे :—

मुनी आर्जका श्रावक श्राविका

भगवान के जो वरिष्ठ शिष्य थे वे गणधर कहलाये। ये एक तरह से भगवान के प्रवक्ता थे। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) इन्द्रभूति (२) अग्निभूति
(३) वायुभूति (४) शुचिदत
(५) सुधर्म (६ मोइण्य
(७) मोर्य पुत्र (८) अकम्पन
(९) अचल (१०) मेदार्य
(११) प्रयास

ये सभी के सभी ऋद्धियो से सम्पन्न थे और प्रथम पांच गणधर लगभग दो हजार एक सो तीस शिष्यो का उत्तर दायित्व सम्हाले थे। छटे सातवें के पास चार सो पच्चीस और शेष चार के पास हर एक के पास छ: सो पच्चीस शिष्यो का दायित्व था इस प्रकार चोदह हजार शिष्य निरन्तर धर्म प्रसार मे रत रहते थे। ये सभी महा विद्वान तपस्वी महिमावान थे ग्रहस्थ अर्थात श्रावको की संख्या डेढ लाख और श्राविकयो की सख्या तीन लाख अठारह हजार से अधिक थी। सती चन्दना जो भगवान की कृपा से मुक्ति पा गई थी स्त्री सघ अर्थात आर्जका संघ को सचालिका थी।

आर्जका सघ उस युग की सबसे वड़ी उपलब्धी थी। चन्दना ज्येष्ठा आदि श्रविकायें आर्जिका संघ की शोभा थी। वे महान सयम और तप का जीवन व्यतीत करती थी। केवल एक खद्दर की सफेद साड़ी मे उन्हे गर्मी-सर्दी काटनी होती थी। रुप से मोह नही था। आर्जिका संघ उनके लिये था, जो आत्म मोह का हनन करके जीवन विता सके। वे उदासीन भाव से स्वयं अपने केस लोच करती थी। यह महाव्रती थी। उनका दर्जा भी मुनी से

कम न था।

संसार से ऊबी, दुख्यारी, जिन्हे ससार ने स्थान नही दिया, उन्हे आर्जिका संघ स्थान देता था।

आर्जिका सघ वास्तव में महिलाओं के लिये श्रेष्ठ स्थान था। उसी मे भद्रा नाम की एक तपस्वो थी, जिसने श्रावस्ती मे प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य सारी पुत्र से तर्क किया था।

इतनी विदुषी महिला का पुराना जीवन...

भद्रा का पुराना जीवन मोह का जीवन था। वह राजगह के प्रमुख कर्मचारी की बेटी थी। अनायास ही उसकी नजर केसा नाम के डाकू पर पड़ी। केसा बहुत सुन्दर जवान था। उसके मजबूत शरीर, पुष्ट, पुट्ठों को देखकर वह मोहित हो गई।

मोहपाश बढ़ता गया।

मन मे निश्चय किया वह शादी करेगी तो सिर्फ इसी से व्याहुगी तो केवल केसा से।

और अन्त मे उसने उसे पति रूप मे पा भी लिया।

मगर वैवाहिक जीवन तो जैसे खवाब बन गया।

अपने निश्चय पर उसे दुख हुआ।

उसने गलत निर्णय लिया था। केसा उसे प्यार नही करता था। केसा प्यार करता था उसके आभूषणों को। उसे उसके रूप से कोई सरोकार नही था उसे सरोकार था उन धन से जो उसका था।

विवाह सफल नहीं हुआ दाम्पत्य जीवन कलह मे बदल गया और भद्रा को वैराग्य हो गया। लेकिन जायें तो कहां। केसा डाकू था, डाकू रहा। मां बाप की बगैर मर्जी के की हुई शादी, वे क्यों उत्तरदायी बनेंगे। चारों ओर घोर अन्धकार।

कहीं कोई स्थान नहीं।

कोई रोशनी नहीं—

तब एक रोशनी दिखलाई पड़ी आर्जिका संघ का झिलमिलाता प्रकाश उसके सम्मुख आकर नाचने लगा। वह निहाल हो गई। संसार से उदासीन वासना से ठगी भद्रा, अपने पति से प्रतिग्रह से अपने शरीर से उदास होकर आर्जिका संघ में आई।

आभूषणों का बोझा उतार फेंका।

उतार फेंके वे रेशमी वस्त्र जिनसे उसका रूप दिखता बनता था, और खद्दर की स्वच्छ साड़ी पहनकर उसने स्वयं अपने केसों का लोंच किया। आर्जिका संघ की शरण में आकर उसके कर्म उससे बिछुड़ते गये। उसकी आत्मा निर्मल होती गई। क्योंकि इस संघ का एक ही मंत्र था।

महावीर का धर्म आचरण करने वाला हर ग्रहस्थ श्रावक है।
ब्राह्मण हो या शूद्र
स्त्री हो या पुरुष
श्रावक, श्रावक है—उसके सिर में क्या मणी लगी होती है।

भगवान महावीर ने पापा चार का बड़ा अनूठा विश्लेषण किया था। उन्होंने बतलाया—

'पाप क्या है ?'

'जीव की अशुभ प्रणति।'

'अशुभ प्रणति क्या है।'

'जो अपने को अप्रिय है वह दूसरे को भी अप्रिय होना चाहिये।'

'प्रणति ?'

'पाप पांच प्रकार के है।'

'कौन कौन से ?'

'हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह।'

भगवान महावीर के पाच आदेश थे—

(१) किसी की हत्या मत करो।

(२) झूठ मत बोलो। ऐसा सच भी न कहो जो औरो को अप्रिय लगे।

(३) किसी की गिरी पड़ी चीज मत उठाओ।

(४) केवल अपनी पत्नी पर सन्तोष व्यक्त करो! जगत की सभी स्त्रिया आपको मा बहन जैसी ही आदरणीय है। भोग्या नही।

(५, आवश्यकता से अधिक किसी वस्तु का संचय मत करो।

मनुष्य जो कुछ सोचता है व उसे अभिव्यक्त करने के लिये महावीर स्वामी ने ६ लेशायें व्यक्त की हैं। वे इस प्रकार है—

कृष्ण

नील

कापोत

पीत

पक्ष

शुक्ल

इसको किस प्रकार समझा जा सकता है, इस विषय मे एक दृष्टान्त प्रस्तुत है। मान लीजिये के ६ व्यक्ति हरे भरे आम के पेड़ के पास जाते हैं और उसके उपयोग छः को विभिन्न प्रक्रियायें व्यक्त करते हैं। यथा—

पहली प्रतिक्रिया (कृष्ण) पूरा पेड़ जड़ से उखाड़ लें।

दूसरी प्रतिक्रिया (नील): पेड़ की आवश्यकता नही है, तने से काम चल सकता है।

तीसरी प्रतिक्रिया (कापोत) : टहनियां ही काट ली जायें।

चौथी प्रतिक्रिया (पीत) टहनी क्यो तोड़ी जाये केवल उन्हे हिलाकर आम तोड़ लिये जाये।

पांचवी प्रतिक्रिया (पक्ष) : जो पके आम है उन्ही को तोड़ने से काम चल सकता है।

छटवी प्रतिक्रिया (शुक्ल) : केवल काम ही तो चलाना है न। नीचे जो आम पड़े है उन्ही से काम चला लिया जाये!

महावीर स्वामी ने दान के विषय मे भी अपनी व्याख्या देते हुये मूले करके व्यक्तियो को बतलाया था कि दान चार प्रकार का है—

(क) अभयदान

(ख) ज्ञानदान

(ग) औषधिदान

(घ) आहारदान

सुपात्र को उपरोक्त दान देने से और मनोयोग से देव पूजन करने से अशुभकर्मों का नाश होता है और पुण्यकर्मों का उदय होता है धीरे-धीरे कर्म लोप होते हैं। कर्म लोप हो जाने के बाद निर्जरा की स्थिति से होता हुआ प्राणी मोक्ष को प्राप्त होता है भवभय से छूट जाता है और फिर उसे जन्म जरा मृत्यु का कोई भी भय नही सताता। वह आवागमन के बन्धनो स मुक्त हो जाता है। मुक्त हो जाता है। उसकी मुक्तता सन्देह नही दान किन को देना चाहिये इस विषय मे कहा गया है—

उत्तमपात्र—निग्रन्थ गुरू

मध्यमपात्र—निग्रन्थ एलक ब्रह्मचारी

जघन्य पात्र—व्रती और श्रावक

प्राणी मात्र को करुणा और दया का दान देना आवश्यक है दान का विकास और ज्ञान का दान देना भी हर हालत में श्रेष्ट है। जैन धर्म निषिद्ध दोनों मे निम्न दान मानता है—

स्वर्ण

हाथी गऊ

कन्या

दास और दासी

इन दोनों में व्यक्ति को अपने बड़प्पन का बोध होता है। अतः यह एकदम निकृष्ट कोटि का दान है। इन दोनो से बचना ही श्रेयस्कर है। दान केवल सुपात्र को देना ही जमता है।

६

महावीर स्वामी
स्मृति के झरोखे में
शिल्प की दृष्टि से

राजग्रह की धरती बड़ी पावन है बड़ा सौभाग्य है उसका जब भगवान इस ओर से गुजरे उसे भगवान की चरण रज अवश्य ही मिली है श्रेणिक ने इस जगह भगवान की कई बार वदना की है और हर वन्दना के बाद शंका समाधान भी।

एक बार भगवान ने कहा—'राजन!' अर्हन्त का ध्यान आवश्यक है।'

श्रेणिक ने पूछा—भगवान हर समय यह तो सम्भव नहीं है अर्हन्त भगवान साक्षात विराजमान हो।, भक्त शरीर जीवन्मुक्त भगवान का सामीप्य सदैव नहीं कर सकता—'भगवान ने उसकी शंका समाधान करते हुए कहा था—'तुम ठीक कहते हो। चौथे काल मे ही केवल ज्ञानी अर्हन्त के दर्शन सम्भव है। आगे ऐसी भी स्थिति आ सकती है कि जब महापुरुष नही जनमे। ऐसी स्थिति मे परोक्ष रीति से वन्दना करनी चाहिये। परोक्ष रीति से मूर्तियों का महत्व केवल इतना है कि मन एकाग्र हो जाता है। और उस एकाग्र मन से हमारा ध्यान संसार की उहा मोह से हट कर एकाग्रता की ओर लग जाता है।'

भगवान की इस व्याख्या का उनके अनुयायिओं ने ध्यान रखा और ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुषानयुग से जैन सम्प्रदाय के लिये मूर्तियों का गठन शुरू हुआ है। मगर मारुति नन्दन प्रसाद

तिवारी के प्रकाशित एक लेख मे कहा गया है।

'जैन धर्म मे मूर्ति पूजा और मूर्ति निर्माण की परम्परा का प्रादुर्भाव मौर्य युग से ही होना निश्चित हो गया था। इसका प्रमाण पटना के समीप लोहानीपुर से प्राप्त मौर्य युगीन चमकदार आलेप से युक्त जैन तीर्थंकरो की निर्वस्त्र प्रतिमायें। ये मूर्तियां आजकल पटना संग्रहालय में संगृहीत है। किस तीर्थंकर का अंकन उनका अभिप्रेत था, यह किसी प्रकार के लेख या लांछन आदि के अभाव मे बता पाना सम्भव नही है। जैनों का सर्वप्रथम शिलागत अंकन आयागपट्टों के रुप मे पर्व-कुषाण युग मे प्रारम्भ हुआ। इन आयागपट्टों का निर्माण वर्गाकार पूजा शिलाफलको के रुप मे किया जाता था, जिसमें अष्टमांगलिक चिन्हों से आवेष्टित तीर्थंकर आकृति को मध्य में पदमासनस्थ चित्रित किया जाता था। यहा किसी प्रकार के उल्लेख के अभाव मे यह निश्चय कर पा सकना सम्भव नहीं है कि किस तीर्थंकर का अंकन उसका अभीष्ट था। कुषाण युग मे ही पादपीठ पर तीर्थंकरो के नामोल्लेख का परम्परा आविर्भूत हुई जिससे चित्रित तीर्थंकर की पहचान सम्भव हो सकी। साथ ही प्रत्येक तीर्थंकर के दोनो पार्श्व मे दो गणधर और पीठिका पर धर्मचक्र या पूजन दृश्य भी प्रदर्शित किया जाने लगा। विकास की अगली शृंखला में गुप्त युग मे समस्त तीर्थंकरो के अलग अलग लांछण (प्रतीक) निर्धारित किये गये और क्रमशः अनेक सहायक आकृतियों को सम्बद्ध के रुप मे संपूजित किया जाने लगा, यथा शासनदेवता गन्धर्व, किन्नर, उपासक, सिंहासन हस्ति-युगल, वृषभों या मृग का एक युगल, सिंह पीठिका, चामर, कैवल्य-वृक्ष और ढोल बजाती एक मानव आकृति। फलतः प्रतिमाला-क्षणिक दृष्टि से तीर्थंकर प्रतिमाएं कालगत विकास के परिणाम

स्वरूप अत्यन्त क्लिष्ट होने लगी।

'तीर्थंकर प्रतिमाओ के विकास की इन्ही अवस्थाओ से गुजरने के उपरान्त अपनी पूर्णता की स्थिति मे महावीर अंकन की निम्न-लिखित विशेषतायें होती थी। महावीर प्रतिमाये पूर्णतः नग्न, नासाग्रदृष्टि और कायोत्सर्गमुद्रा मे खडी (खड्गासन) या ध्यान मुद्रा मे आसीन (पद्मासनस्थ) होती थी। महावीर बिंबो मे यदा-कदा वस्त्रो का कुछ अंश भी प्रदर्शित किया जाता था, जो श्वेताम्बर सप्रदाय से सम्बन्धित होने का सूचक होता है। अधिकाश मूर्तियो के वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह प्राप्त होने के साथ ही हस्ततल एव सिंहासन पर धर्मचक्र और उष्णीष तथा ऊर्णा (भौहो के मध्य का रोम गुच्छ के चिन्ह भी प्राप्त होते है। साथ ही प्रभावली और दोनो पार्श्वो मे शासन देवताओ के अतिरिक्त अन्य कई सहायक आकृतिया भी अंकित की जाने लगी। सिंहासन के दोनो ओर सिंह और उसके मध्य मे उनका विशिष्ट लाछन उत्कीर्ण होता था। उनके कर्ण स्कन्धो तक लम्बे और भुजाएं घुटनो तक प्रसारित होती थी। उन्हे युवक रूप मे अष्टप्रतिहार्यो (दिव्यतरु, सिंहासन, छत्र, मण्डल, दुन्दुभि, सुरपुष्पवृष्टि, चामरयुग्म, दिव्यध्वनि) मे से किसी एक से युक्त दिखाना चाहिये। ठीक इन्हीं विशेषताओ का प्रतिपादन वराहमिहिर ने वृहत्संहिता मे किया है :

आजानु लम्बबाहुः श्रीवत्साक प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासा तरुणो रूपवांश्च कार्वोऽर्हता देवः॥

(वृहत्सहिता ५८ अध्याय)

महावीर का विशिष्ट लांछन सिंह और जिस वृक्ष के नीचे उन्हे कैवल्य की प्राप्ति हुई। वह शाल वृक्ष है। उनसे सम्बद्ध यक्ष

मातगं और यक्षिणी पद्मा या सिद्धायिका है। बिम्बों में येन केन इनके चॉवरधारी के रूप मे मगध सम्राट श्रेणिक या बिम्बसार को भी अंकित किया जाता था।

महावीर की कई प्रारम्भिक मूर्तियों मथुरा के कंकाली टीले पर हुए उत्खननों द्वारा प्रकाश में आई हैं। इस स्थल से पूर्व कुषाण युग से लेकर मध्य युग तक की जैन प्रतिमाओं के उदाहरण उपलब्ध हुए है। यहां से प्राप्त महावीर चित्रण, जिनमें मुख्य आकृति बोधिवृक्ष के नीचे आसीन है, की निश्चित पहचान विवादास्पद है। यहां से उपलब्ध एक मूर्ति में, राजकुमार को दीक्षा देने वाली छत्रयुक्त एक आकृति और उसके तीन सेवकों को शिक्षा दे रही है। सम्पूर्ण दृश्य की ओर बायीं ओर एक सिंह शीर्ष प्रदर्शित किया गया है, जिसका मण्डन अक्मेनियन शैली में हुआ है। मथुरा से प्राप्त होने वाले एक अन्य चित्रण में एक बालक को ज्वालाओं के कीर्तिमुख से युक्त प्रदर्शित किया गया है। इस प्रतिमा का केवल शीर्ष भाग ही अवशिष्ट है। इसी स्थान में एक अन्य मनोज्ञ आदम कद प्रतिमा प्राप्त होती है। इन समस्त चित्रणों की पहचान मात्र के आधार पर फ्यूरर महावीर अंकन से करते हैं जो सिनब का स्वीकार्य नही है। मथुरा से उपलब्ध दो अन्य पूर्णतः नग्न और मनोज्ञ बिम्बों में तीर्थंकर को अपने लांछन सिंह के साथ उत्कीर्ण किया गया है, जो स्वतः उनके महावीर अंकन होने का सूचक है। इसी स्थल से २४ तीर्थंकरों का सामूहिक अंकन करने वाला एक उदाहरण उपलब्ध हुआ है, जिसमे गहन चिन्तन में लीन महावीर को मध्य मे ध्यान मुद्रा में एक आसन पर आसीन प्रदर्शित किया गया है। महावीर के दोनो पार्श्वों व ऊपर की ओर अन्य २३ तीर्थंकरों को अंकित किया गया है। पादपीठ पर उत्कीर्ण सिद्-

आकृति से मध्य की प्रतिमा के महावीर अंकन होने को बल मिलता है। मुख्य आकृति की केशावलि गुच्छकों के रूप में दिखाई गई है। समूचा अंकन एक अनुपम सौंदर्य का पुंज बन कर रह गया है। पीठिका पर उत्कीर्ण लेख सर्वथा अपूर्ण और अपठनीय है, किन्तु लिपिशास्त्र के आधार पर इसे पांचवी सदी ईस्वी की कृति माना गया है। एक अन्य आसीन चित्रगण मे पीठिका पर अंकित सिंह इसे महावीर प्रतिमा बतलाता है पद्मासनस्थ और भामण्डल युक्त के महावीर के दोनो ओर दो व्याल आकृतिया प्रदर्शित है। सिंहों के मध्य दो घुटने टेके उपासक आकृतियो का धर्म-चक्र की वन्दना करते हुये चित्रण मनोहारी है। एक अन्य मूर्ति मे प्रदर्शित दो आकृतियो में से एक की निश्चित पहचान पीठिका पर उत्कीर्ण सिंह के आधार पर महावीर से की गई है। महावीर प्रतिमा अपने चैत्यवृक्ष के नीचे आसीन है। वेष-भूषा और लिपि से मूर्ति का निश्चित काल दसवी से बारहवीं शताब्दी के मध्य अनुमानित होता है। मथुरा से ही प्राप्त होने वाले दो अन्य अंकनों की पहचान पीठिकाओ पर उत्कीर्ण सिंहो के आधार पर महावीर से की गई है। दोनो ही अंकन देवदूतों, भुजाओ में पुष्प मालाओं के आधार उड्डायमान गन्धर्वों की आकृतियो से आवेष्टित है।

महावीर की एक अन्य कुषाणयुगीन पद्मासन मुद्रा मे विराजमान प्रतिमा की पीठिका (९ इन्च ऊंची) यमुना नदी से प्राप्त हुई है, जो सम्प्रति मथुरा संग्रहालय में (क्रमांक २१२६) संगृहीत है। पादपीठ पर खुदे अधूरे लेख में वर्धमान का स्पष्ट नामोल्लेख होने के बावजूद यह प्रतिमा तिथ्यंकित नही है। कंकाली टीले से ही ध्यान मुद्रा मे आसीन महावीर प्रतिमा (१ फुट ४ इन्च ऊंची) का एक और भग्नावशेष उपलब्ध होता है, जो संप्रति मथुरा संग्रहालय

की निधि है। लेखयुक्त पादपीठ पर चित्रित संक्षिप्त अर्थ स्तम्भों पर धर्मचक्र स्थित है, जो आठ पूजकों द्वारा वंदित हो रहा है ये सम्भवतः मूर्ति के दान कर्त्ताओं की आकृतियो का अंकन करती हैं, दया राम साहनी ने इस पर उत्कीर्ण कुषाण कालीन लेख के आधार पर इसे कुषाण संवत् के ८४ वें वर्ष (१६० ई०) मे तिथ्यंकित किया है। मथुरा संग्रहालय (क्रमांक ५३६) मे संकलित मथुरा के ही गूजर घाटी स्थान से प्राप्त एक मध्ययुगीन चित्रण मे कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी मुख्य आकृति को अन्य २३ तीर्थंकर आकृतियों से वेष्टित प्रदर्शित किया गया है। बहुत सम्भव है कि मध्य में अवस्थित मूल नायक की आकृति पूर्व प्रतिमाओं के सदृश ही महावीर का अंकन करती हो। मथुरा संग्रहालय (बी. १) मे स्थित कंकाली टीले से उपलब्ध होने वाली महावीर की एक प्रतिमा में देवता को ध्यानमुद्रा मे आसीन प्रदर्शित किया गया है। देवता का कांति मण्डल कमल पंखुड़ियों के अलंकरणों वाला है और उनके केशों की सविशेष संयोजना गुच्छकों के रूप मे प्रदर्शित है।

महावीर का चित्रण करने वाली एक गुप्तयुगीन (५वीं ई०) मूर्ति भारत कलाभवन, वाराणसी, मे संगृहीत है। वाराणसी से प्राप्त इस प्रतिमा में देवता को ऊंची पीठिका पर ध्यानमुद्रा मे आसीन चित्रित किया गया है। पीठिका के मध्य मे उत्कीर्ण धर्म-चक्र के दोनो ओर दो सिंहों का प्रदर्शन इस प्रतिमा की महावीर अंकन से पहचान की पुष्टि करता है। पीठिका के दोनो छोरो पर चित्रित दो तीर्थंकर इस अंकन की अपनी विशेषता है। इस नयनाभिराम चित्रण में महावीर के दोनों पार्श्वों में दो आकृतियों को उत्कीर्ण किया गया है, जो सम्भवतः शासन देवता हैं। महावीर के पृष्ठभाग प्रदर्शित चांद्राकार नभामण्डल के दोनों ओर दो

उड्डायमान गन्धर्वो का चित्रण ध्यानाकर्षक है। देवता की केश-रचना गुच्छको के रूप मे निर्मित है। गुप्तयुगीन समस्त विशेषताओं से युक्त इस महावीर प्रतिमा के मुखमण्डल पर प्रदर्शित मदस्मित, शांति व विरक्ति का भाव प्रशसनीय है।

मध्ययुगीन खजुराहो मन्दिर मे भी महावीर का एक मनोज्ञ बिम्ब कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्ण है, जिसमे पूर्णतः नग्न महावीर को उनके विशिष्ट लक्षण सिंह से सम्बद्ध रूप मे चित्रित किया गया है, देवता की मुखाकृति पर शांति और सौम्यता का भाव सुस्पष्ट है मस्तक पर सर्पफणो के घटाटोपों से युक्त देव पार्श्व मे खड़े उपासक देवताओं से आवेष्टित हैं। साथ ही अन्य कई सहायक आकृतियों की सयोजना भी मनोहारी है। महावीर की एक अन्य पद्मासनस्थ प्रतिमा देवगढ के मन्दिर न० २१ मे प्राप्त होती है, जो शैली के आधार पर १० वी-११ वी सदी मे प्रतिष्ठित प्रतीत होती है। कमल सदृश अलकरणो के प्रभामन्डल से युक्त मूल नायक की आकृति के दोनो पार्श्वों में उनके शासन देवता त्रिभग मुद्रा मे खड़े हैं। देवता के शीर्षभाग पर पुन. दो आसीन तीर्थंकरों का बिम्ब उत्कीर्ण है। भामन्डल के ऊपर तीन श्रेणियों मे विभक्त त्रिछत्र के दोनों ओर हाथों मे पुष्पमाल लिये उड्डायमान विद्याधर भी चित्ताकर्षक रूप से विद्यमान है। देवता के नेत्रों और भौहों का अंकन मनोहर है। पादपीठ के नीचे दो सिंह आकृतियों को भी सयोजित किया गया है। आसन के नीचे लटकता हुआ फलक इस मूर्ति की विशिष्टता है।

'महावीर की बलुए प्रस्तर मे निर्मित एक विशिष्ट प्रतिमा जिसका अर्ध-ऊर्ध्व भाग ही शेष है, संप्रति बोस्टन संग्रहालय मे स्थित है। यह ऊर्ध्वकाय प्रतिमा सूक्ष्म निरीक्षण से नग्न रही

प्रतीत होती है। प्रतिमा की ऊंची केशरचना वास्तव में उनकी साधु प्रकृति की सूचक है। महावीर के केश-गुच्छक उनके स्कन्धों पर लटक रहे हैं। वक्षस्थल पर तीर्थंकरों का विशिष्ट चिन्ह श्रीवत्स उत्कीर्ण है। मस्तक के ऊपर प्रदर्शित त्रिछत्र, अशोकवृक्ष और कुछ आकृतियों से वेष्टित है। मूर्ति के बाईं व दाईं ओर व दलों में प्रकट होने वाले विद्याधर युगल को पूजा-सामग्रियों सहित मध्य की ओर बढ़ते हुए प्रदर्शित किया गया है। देवता के स्कन्धों के समीप दोनों पार्श्वों में दो सिंहों का चित्रण उत्कीर्ण है। डा० कुमार स्वामी ने इस प्रतिमा को निश्चित रूप से महावीर अंकन से पहचानकर इसे ९ वीं शती ईस्वी में तिथ्यांकित किया है। शैली व निर्मिती के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रतिमा सम्भवतः बुन्देलखन्ड उत्तरी भारत, से उपलब्ध हुई होगी।'

भगवान महावीर के निम्न तीर्थों पर भी सुन्दर सौभाग्य ऐतिहासिक दृष्टि से गणना योग्य मूर्तियां हैं:—

× अहिछेत्रा : बरेली के निकट

× इलोरा

× एहोला—यह प्रदेश बीजा जिले में प्राचीन आर्यपुर है। सन् ६३४ में कवि रविकीर्ति ने भगवान महावीर का मंदिर निर्मित कराया था। महावीर स्वामी की प्राचीन प्रतिमायें देखने योग्य हैं। कवि रवि कीर्ति ने चालुक्य राजा पुलकेशी के दरबार से अत्याधिक सम्मान प्राप्त किया था।

× ओसियाँ :—आबू (अचलगढ़) के निकट इस प्राचीन तीर्थ में महावीर स्वामी का दर्शनीय मन्दिर है।

× कापर्डी :—जोधपुर के जिले में स्थित गुरुजनोपासना में भग-

वान महावीर की प्राचीन मूर्ति स्थापित है। इस स्थान की प्रसिद्धि 'पुराणवीर' की प्रतिमा के रूप में स्थित है।

× कुन्डलपुर : यह क्षेत्र अतिशय तीर्थ के अन्तर्गत आता है महावीर स्वामी की प्रतिमाये के अतिरिक्त यहां जो पहाड़ी पर सरोवर है उसे वर्द्धमान सरोवर कहा जाता है।

× ग्वालियर : इसका प्राचीन नाम गोपीपुर है। यहा के किले मे भी अनेक जिन तीर्थकंरो की मूर्तियां है, उनमे भगवान महावीर की प्रतिमायें भी है।

× चित्तोड़ : चित्तोड़ का प्रसिद्ध कीर्ति स्तम भगवान महावीर के एक प्राचीन मन्दिर का मान स्तम्भ है।

× चन्देरी : यह स्थान झासी जिले मे स्थित है यहा की दर्शनीय तीर्थकंर मूर्तियो मे भगवान महावीर की मूर्ति वेहद लावण्यमयी, श्रद्धायुक्त और आभा से भरपूर है।

× जयपुर और भरतपुर के जैन मन्दिरो मे स्थित महावीर स्वामी की मूर्तिया।

× तिरुमलय पर्वत : दक्षिणी भारत मे स्थित इस स्थान पर भगवान महावीर स्वामी की हाथ की मिट्टी की मूर्ति अति सुन्दर है।

× तेरपुर : यह स्थान हैदराबाद आंध्र प्रदेश के जिला उस्माना वाद में स्थित है। यहां भगवान महावीर की साढे तीन हाथ की सुन्दर मूर्ति स्थित है।

× दही गाव : यह क्षेत्र जिला शोलापुर में है मन्दिर में श्री महावीर स्वामी की मूर्ति स्थापित है। मन्दिर का मानस्तम शिखिर मीलों से दिखाई पड़ता है।

× पफोसा : जिला इलाहाबाद स्थित इस अतिशय क्षेत्र मे प्रभास

पर्वत नाम का तीर्थ है। कहा जाता है यहां के मन्दिर में जो भगवान महावीर की प्रतिमा है वह चौथे काल की है।

× पाकवीर : जिला मानभूम साढे सात फुट ऊंचा भगवान महावीर की यह मूर्ति खड्गासन भीरम के नाम से पूजी जाती है।

× शत्रुंजय : सौराष्ट्र स्थित प्रमुख जैन तीर्थ। यहां भी भगवान महावीर की मूर्तियां उपस्थित हैं।

× महावीर जी : चान्दन गाव स्थित जयपुर राजस्थान का अतिशय तीर्थ क्षेत्र। महावीर जी के विशाल मन्दिर में भगवान महावीर की सुन्दर भव्य, दिव्य मूर्ति स्थापित है। यह मूर्ति एक ग्वाले द्वारा भूगर्भ से खोदी गई थी। भरतपुर के दीवान श्री जोधराज जी ने वृहत मन्दिर बनवाकर मूर्ति को प्रतिष्ठित किया था। इस चमत्कारिक मूर्ति मे हर आगन्तुक की श्रद्धा युक्त मनोकामना पूरी करने की शक्ति है।

इसके अलावा भगवान महावीर स्वामी के सम्बन्ध में अन्य कई स्थानों पर लेख मानपत्र, स्तम्भ लेख ताम्रपत्र आदि मिलते हैं।

७

प्रभुका मार्ग : सबका मार्ग
सहन शक्ति : समभाव : और
उदार अतिशय करुणा वाला
सुन्दर, सहज, मुक्ति का मार्ग

भगवान महावीर स्वामी के अनुयायियो की सख्या का ओर छोर न था। मगर जिन महत्व पूर्ण व्यक्तियो ने उनके पावन पथ को स्वीकार किया उनमे आम जनता, विद्वान, धर्म भिक्षुओं के अलावा सबसे अधिक सख्या बड़े बड़े राजा महाराजा सेठ साहूकारो की थी।

कौशाम्बी के नरेश शतनिक ने भगवान से दीक्षा लेकर साधू बनना स्वीकार किया था और वे मुनि हो गये। उदयनरायन बना।

बनारस मे जिस शत्रु ने भगवान की विनय भक्ति से अभ्यर्थना की थी और वहां के ग्रहस्क सूर देव तथा चन्न अपनी पत्नी सहित श्रावक का व्रत लेकर भगवान की शरण मे आये थे। राजकुमारी मुन्डिका ने भी श्राविका बनाना स्वीकार क्या था।

कलिंग देश के राजा जित शत्रु के अलावा, पुण्ड्र, वंग और तास्र लिपि प्रदेशो मे भी भगवान के अनुयायी बने थे। मगर भगवान क्षेत्र समूचा भारत था। मैसूर के राजा जीवधर ने भगवान का सुरमलय नामक उद्यान मे स्वागत किया था। उनको भावभक्ति से अभ्यर्थन की तथा दीक्षा लेकर मुनि हो

गये ।

श्रावस्ती के नरेश प्रसेनचित ने भगवान महावीर का स्वागत किया और उनकी महारानी मल्लिका ने एक समागृह बनवाकर समर्पित किया।

विदेह प्रदेश की राजधानी। मिथिला, पोलापपुर के राजा विजय सैन और अंग देश के सम्राट कुनीक ने चम्पा में भगवान का स्वागत किया। कुनीक उन्हे कौशाम्बी तक पहुचाने गया था। चम्पा में ही राजा दहिवाहन ने दीक्षा लेकर संघ नंरक्षण स्वीकार किया।

मालवा—

राजस्थान।

उज्जैन।

पंचनद की राजधानी तक्षशिला।

सौर देश की राजधानी मथुरा...

पांचाल की राजधानी कम्पिला।

मगर भगवान महावीर का कार्य क्षेत्र बढ़ता ही गया। ईरान के राजकुमार आर्दरक पारस्व, पांचसों यूनानी भवन योद्धा कोई संख्या नही, संख्या का कोई ओर छोर नहीं। भगवान के इन अनगिनत अनुयायियों मे इतिहास पुरुष भी हैं।

एक है श्रेणिक बिम्बसार!

बड़ी अनुपम कथा है इनकी! ये जन्म से भगवान के भक्त नहीं थे। इनके पिता राजा उपश्रेणिक ने उनको मगध से देश निकाला दे दिया तो यूं ही घूमते रहे और फिर मठ में जाकर बौद्ध बन गये। घूमते हुये वे सुदूर दक्षिण के कांचीपुर में जा पहुंचे। मेधावी और कुशल थे ही अतः उन्हें वहां शीघ्र ही राज

सम्मान प्राप्त हो गया। राजपुरोहित की कन्या नन्द श्री इन पर मोहित हो गई। राजपुरोहित सोमशर्मा स्वयं इनका बड़ा आदर करते थे अतः इनका प्रथम विवाह राजपुरोहित सोमशर्मा की कन्या नन्द श्री से हुआ। इनके बड़े लड़के का जन्म इसी रानी से हुआ था।

केरल के नरेश मृगांक ने भी अपनी लड़की विलासवती से इनका विवाह सम्मान के साथ किया।

जब श्रेणिक के पिता मर गये तो चिलातपुत्र मगध के सिंहासन पर बैठा। मगर शासन सूत्र न सम्भला और वे जैन साधू हो गये। फिर श्रेणिक ने आकर राज्य सम्भाला।

उनकी पटरानी महारानी चेलनी बनी।

उस वक्त तक श्रेणिक जैन धर्म से द्वेष रखते थे और एक बार जब वे शिकार खेलने गये तो जंगल मे जैन साधू यमधर को तपस्या मे रत पाया।

क्योंकि श्रेणिक बिम्बसार को जैन धर्म से द्वेष था अतः तपस्या रत साधू उन्हे महज ढोंग दिखलाई पड़ा।

और उन्होने पांच सौ शिकारी कुत्ते उस साधू पर छोड़ दिये।

जैन साधू क्षमा शीलता के अवतार होते है। क्षमा अपने में बड़ी शक्ति है। निरीह पशु कितने ही खूंखार हो, क्षमाशीलता से प्रभावित शिकारी कुत्ते यमधर मुनि के चरणों में लोटने लगे।

आश्चर्य ! घोर आश्चर्य।

ऐसा न कभी देखा था, न कभी सुना था।

श्रेणिक ने सोचा, हो सकता है यह भी इन साधुओ की कोई

माया होगी, इसलिए राजा और उद्विग्न हो उठे।

उन्होंने तरकश से तीखे बाण निकाल कर मारे।

मगर फिर आश्चर्य हुआ।

बाण भी विफल हुये।

अब तो राजा श्रेणिक का गुस्सा और बढ़ गया। जरूर यह कोई मायावी पाखन्डी है। झल्ला कर उन्होने एक मरा हुआ सांप उस तपस्वी के गले मे डाला और रानी चेलना को जाकर अपनी सारी बातें बतलाई। रानी चेलना को दुख हुआ। बोली—'आपको क्या मालूम······'

'पाखन्ड।'

'वह पाखन्डी नही हो सकता। अगर पाखन्डी होता तो उसमें इतनी क्षमाशीलता न होती। आपके शिकारी कुत्ते इस प्रकार हताश न होते। आपके बाण खाली न जाते।'

'तो···'

'वह उपसर्ग सह रहे होंगे। हाय आपने कितना पाप कमा लिया है।'

'क्या यह पाप है।'

'बेसक पाप है। कैसे प्रायश्चित करेंगे इस पाप का?'

'मैं नही मानता यह पाप है। वह साधू चला गया होगा।'

'जरूर होगा!'

'अच्छा चलते है। अगर साधू वहां हुआ। और उसने उपसर्ग सहा होगा तो हम प्रायश्चित करेंगे।'

'चलिये।'

राजा और रानी दोनों उसी जगह में गये। मुनि यशधर न पहुंचने की भांति तपस्या कर रहे थे। उनके ऊपर चींटियां रेंग रही

थी और उन लाखों चीटियों ने मुनि के शरीर को घायल कर दिया था। ध्यान टूटा नहीं था। रानी की आंखो से आंसू बह निकले। आह कैसा घोर अनर्थ है। रानी ने चीटियों को हटाकर मुनि के शरीर पर चन्दन का लेप किया। मुनिवर ने जब समझा कि उपसर्ग टल गया है तो उन्होने आखें खोली।

सामने राजा था।

राजा के साथ रानी थी।

रानी ने मुनि श्रेष्ट को नमस्कार किया।

मुनि ने राजा और रानी दोनों को समान भाव से धर्म वृद्धि आर्शीवाद दिया।

इतनी क्षमाशीलता'''ऐसी करुणा मूर्ति। उपसर्ग सह लेने के बाद न सुख, न दुख। राजा दंग रह गया।

उसका मन पश्चाताप और ग्लानि से भर गया। जैन धर्म का स्वरुप अब समझ मे आया। उसने मुनिवर की यथेष्ट पूजा की और फिर विपुलाचल पर आये भगवान महावीर की सपरिवार जाकर वन्दना की।

फिर जो एक बार वे भगवान की शरण आये तो उनका जीवन ही बदल गया। कहां वे जैन धर्म के द्वेषकारी, कहा उनके देखते देखते कई कुमार वनवासी मुनी हो गये।

श्रेणिक बिम्बसार ने महाराज महावीर स्वामी के साथ सबसे अधिक सतसंग किया था और ऐसी ऐसी शंकाओ के समाधान खोजे थे जो काल वश आज नही है। अथवा इस विश्व मे इतने पाप नही होते। उनमे से कुछ शकायें है उनके समाधान के साथ प्रस्तुत है।

श्रेणिक ने पूछा—'महामान्य आप तो बड़ी कम आयु मे

सन्यास की ओर प्रवृत्त हो गये। जब आपको भोग की समस्त सामग्री प्रस्तुत थी तो आपने उसका भोग क्यों नहीं किया।'

'राजन ! भोग नाम का सुख अलग है। खाज लगी हो तो मनुष्य को खाज में ही आनन्द आता है। कुत्ता हड्डी चबाकर आनन्द लेता है। मगर जब दोनों में खून खून होता है तो रोते ही है। वासना में आनन्द आता है न।'

'हां स्वामी !'

'तो ज्वर आक्रान्त व्यक्ति वासना का आनन्द क्यों नहीं लेता ?'

'आप प्रभु धन्य हैं। अब समझा...

'क्या ?'

'दासता में सुख नहीं।'

'तुमने बिलकुल सही समझा राजन ? दासता में कदापि सुख नहीं मिलता। सबसे बड़ी आजादी आत्मा की आजादी है। उस आजादी को पाने के लिये देर क्या सबेर क्या। केवल मानव जन्म ही ऐसा है जब शुभ कर्मों द्वारा और कर्मों के बोझ से वंचित होकर मनुष्य परम पद पर पहुंच सकता है तो फिर उसमें देरी करने का क्या अभिप्राय ? क्यों देरी की जाय।

'भगवन आप सही कहते हैं। आपकी वाणी सत्य है। मगर आत्मा का कल्याण काहें से है।'

'कर्मों के विनाश होने से।'

'और तीर्थाटन !'

'अगर यह तीर्थ मनुष्य के अन्तर से कर्म निकाल सकें। जिस प्रकार हमारे देश में लोग तीर्थ करते हैं। गंगा और गोदावरी में

स्नान करते हैं। संसार के भीरु प्राणी पर्वत, वन वृक्ष, चैत्य, यक्ष, इन्द्र आदि को देव मानकर उनकी शरण मे जाते है। किन्तु यह सडक मंगलदायक नही, शुभ नही। जो स्वयं विनाशशील है वह दूसरे को क्या बचा सकता है। धर्म, जो कर्मो के बन्धन से छुटकारा दिला सके वही श्रेष्ठ है वही उत्तम है। उसी की शरण में जाने से सब कर्मों का विनाश होगा, संवर होकर निर्जरा और मोक्ष का उपादान होगा तो कल्याण होगा।'

श्रेणिक भगवान के इन वचनो को सुनकर गदगद् हो गये! मन शब्दो मे जो कल्याण कारी ओज भरा था वह और कहा मिल सकता था।

उनके ही राजकुमार थे अभय।

अभय राजकुमार भगवान महावीर स्वामी के उपदेशो से बड़े प्रभावित हुये। भगवान ने उसके पूर्व जन्म का चिट्ठा खोलकर बतला दिया कि वह कौन था। क्या करता था।

भगवान ने बतलाया पूर्व जन्म मे वह ब्राह्मण का पुत्र था और वेद के पठन पाठन के लिये घूमा फिरा करता था। मगर मूढ़ताओ मे फसा रहता था।

'मूढ़ता किसे कहते हैं ?'

'पाच प्रकार की मूढ़तायें होती हैं।' कहकर भगवान ने पांच मूढ़ताओ का उल्लेख किया :

(१) पाखड़ मूढता
(२) देव मूढता
(३) तीर्थ मूढ़ता
(४) जाति मूढ़ता
(५) धर्म मूढता

अभय कुमार भी इन मूढ़ताओं में फंसा घूम रहा था कि उसका संग एक श्रावक के संग हो गया और उसने बतलाया कि हे मित्र तुम जो पाखंड मूढ़ता, देव मूढ़ता, तीर्थ मूढ़ता और जाति मूढ़ता तथा धर्म मूढ़ता में अपने को सजोये घूमते हो यह नितान्त गलत और व्यर्थ है। सुनो इस दुनियां में कोई सुर या कोई देव ऐसा नहीं है जो किसी को दुख या सुख दे। सुख या दुख केवल मनुष्य के अपने अच्छे या बुरे कर्म लाते हैं। जो जीव अच्छे कर्म करता है वह पुण्य संचित करके सुख भोगता है और जो बुरे कर्म करता है, उसके पाप संचित होते है। वह दुख भोगता है। अच्छा बतलाओ तो देवता प्रशंसा से खुश हो जावे और निन्दा से नाराज यह कैसा देवता। फिर देवता और मनुष्य में अन्तर ही क्या रहा? भगवान तो पूरे संसार का रक्षक है। ऐसा तो किसी जनपद का शासक भी नहीं हो सकता।

उस श्रावक का संग पाकर वह ब्राह्मण उच्च कर्म करता हुआ इस जन्म में तुम्हारे यहां जन्मा है।

अभयकुमार को यह सुन कर ही वैराग्य हो गया।

उसने महावीर स्वामी के सम्मुख सिर झुकाया और प्रार्थना की कि भगवान महावीर उसे अपनी शरण में ले लें।

मगर आवश्यक होता है कि यदि कुछ दीक्षा ले तो उसके माता पिता सहमत हों, अतः गणधर ने समझाया कि यह जल्दी न करें पहले माता पिता को तैयार कर ले। उनकी सहमती आवश्यक है भगवान महावीर और गणधर की इस बात को भी राजकुमार अभय ने शिरोधार्य किया और कुछ दिन बाद वे श्रेणिक बिम्बसार की सभा में उपस्थित हुवे। राजसभा में आकर उन्होंने भक्ति पूर्वक महाराज को नमस्कार किया और फिर [illegible]

भाषण करने लगे कि सब दातो तले अंगुली दबालें। इसके बाद उन्होने सुयोग पाकर पिता से मुनि हो जाने की इच्छा व्यक्त की।

'तात।'

श्रेणिक बिम्बसार का स्वर कातर हो उठा। वे नही चाहते थे कि जिस राजकुमार को अब तक सुखो की शैया मिली है, उसे तप के कठोर आसन पर सोने की अनुमति दी जाये। मगर जब उन्होने स्वय राजकुमार को अपने निश्चय पर दृढ देखा तो उन्होने सहमती दे दी।

राजकुमार अभय को स्वयं भगवान महावीर ने प्रवजित किया श्रेणिक ने खूब मगलो उत्सव मनाया।

राजकुमार अभय मुनि होकर तपस्या मे लीन हुये और कर्मों का नाश करके केवल ज्ञान को प्राप्त हुये।

केवल ज्ञान हो जाने पर राजकुमार अभय दूर देशो में धर्म का उपदेश देते गये और फिर मोक्ष गामी हुये।

श्रेणिक बिम्बसार के दूसरे पुत्र थे मेघकुमार आठ रानियो के पति थे ! सुखपूर्वक रहते थे। उनका सारा समय आमोद प्रमोद मे बीतता था वे इतने सुख मे जीवन व्यतीत करते थे कि उन्हे बुढ़ापे की चिन्ता ही न थी। एक समय अनायास भगवान महावीर राजग्रह के उद्यान मे पधारे थे। लोगो की टोली की टोली समुदाय का समुदाय उनकी वन्दना के लिये जा रहे थे। मेघकुमार भी भगवान की वन्दना करने लगे। भगवान का प्रवचन सुनकर मेघकुमार का मन प्रसन्न हो गया। मन निर्मल हो गया। भगवान के चरणो मे गिरकर बोला—'भगवान आपने मेरी आखें खोल दी। मैं आपकी दीक्षा चाहता हू—'

भगवन महावीर मौन रहे।

मेघकुमार को जो एक बार वैराग्य सूझ गया सो सूझ गया। उसने एक बार जो निश्चय कर लिया वह निश्चय अटल था। माता पिता के मन पर इस बात का गहरा सदमा लगा। उन्हों ने पहले समझाया बुझाया, फिर आठों पत्नी मेघकुमार को रिझाने आ गई।

मगर जिसे वैराग्य का चसका लग जाये उसे कोई लोभ कोई आकर्षण नहीं रोक सकता था।

उसके कानों में तो भगवान का स्नेह भरा उपदेश अमृत गूंज रहा था। उसके कान जो एक बार उपदेश सुन चुके थे वे अब कोई और स्वर लहरी नहीं सुनना चाहते थे। उसे सुनाई पड़ रहा था।

जीतिये—अगर जीत सको तो अपनी इन्द्रियों को जीतो।

धैर्य रखिये। राग द्वेष समाप्त कीजिये।

और कर्मों को समाप्त कीजिये...

और जब राजा ने देखा कि मेघ कुमार किसी भी प्रकार इस संसार में रहने को तैयार नहीं है तो उसे अनुमति दे ही दी।

मां ने कहा—वत्स तुम्हें जन्म जरा और मृत्यु का सामना है तो उसे जीत कर ही छोड़ना। खूब पराक्रम करना। धैर्य से काम लेना। घबराना नहीं। प्रमाद को अपने पास मत फटकने देना। जिस पर तुम जा रहे हो उस पथ पर जाने वाले की मां पूजनीय हो जाती है। तुमने मुझे आदरणीय एवं पूजनीय बना दिया। बेटा, गहिरक वीर बनना।'

मां का दुलार, मां का स्नेह, मां का आशीर्वाद लेकर मेघकुमार भगवान महावीर के अनुयायी बन गये। अब मेघकुमार साधारण भिक्षु थे। सेजों पर सोने वाला राजकुमार अब राजकुमार न रहा

था वह मात्र भिक्षु था। उस शैय्या पर नहीं द्वार के निकट करवट लेकर शयन करता था! आते जाते साधुओं के आने जाने से उनको कष्ट होता था। और ये साधू। ये भिक्षु! जब मैं राजकुमार था तो मेरा कितना आदर करते थे और अब ये उन्हे दीन मानते है।

मां का दुलार याद आने लगा।

पिता का प्यार ठकठकाने लगा।

और मेघकुमार ने सोचा भगवान से आज्ञा लेकर घर चला जाये! वे भगवान कि सम्मुख पहुचे।

मगर भगवान तो अन्तंयामी थे। तुरन्त बोले—'आओ मेघ कुमार क्या घर जाना चाहते हो?'

'जी?'

'तुम्हे यह खलता है कि साधुओ के समूह मे तुम्हारा आसन अन्त मे है?'

'जी—'

'भिक्षुओ की उदासीनता खिल रही है।'

'जी—'

लेकिन वत्स यह आवश्यक हैं।'

'क्यो कर प्रभु।'

'वे साधू मुनिजन जो आपके साथी है। वे साधना के पथ पर हैं। और साधना मे वार्ता नही मौन आपेक्षित है?'

'जी।'

'वे जानबूझ कर तुमसे उदासीन है।'

'क्यों कर प्रभु—'

'इसलिये कि तुम समभाव रख सको। तुम अच्छे और बुरे में

भेद कर सको । जो दीक्षा ले लेते हैं उन्हे सुख दुख दोनों बराबर है । कोई हंसे या रोये । कोई निन्दा करे या प्रशंसा, तुम्हे समभाव रहना है । उपसर्ग भी हो तो सहन करने है ।

'मगर भगवान ।'

'वत्स अब तुम्हें याद नही है । तुम्हारा तीसरा जन्म क्या था पर मैं जानता हूं । अब से तीसरे जन्म मे तुम एक हाथी थे । एक दिन भयानक झंझावत उठा । दिशाये भ्रमित होने लगी । याद है ।'

'नही ।'

जानते हो फिर क्या हुआ !'

'नहीं तो ।'

'जानना चाहते हो न ?'

'हां प्रभू आपकी कृपा हो तो ।'

'दिशायें भ्रमित हो गई । तुम भूल गये तुम्हें कहां जाना है और एक दलदल मे जा फंसे । तुम बार बार निकलने का प्रयास करते थे मगर तुम बार बार दलदल मे फंसते जाते थे भूखे प्यासे अध मुखे । अनायास ही तुम्हारे वैरी वहां आ गये वे आकर तुम पर धुआंधार प्रहार करने लगे । आखिर तुम्हे प्राण छोड़ने पड़े । मगर प्राण छोड़ते वक्त तुम्हारे मन मे एक दुर्भावना थी ।'

'क्या प्रभू ।'

'कि बदला लेना है । बदला—'

'फिर क्या हुआ प्रभू ?'

'इस दुर्भावना ने तुम्हे फिर विन्ध्याचल की पहाड़ियों में हाथी बना दिया ।'

'दूसरी बार भी ।'

'हां वत्स—'

'फिर क्या हुआ प्रभू ?'

'वनो मे आग लगती रहती है। दावानल कहते हैं उसे। तुम अक्सर दावानल से बचने के लिये सुरक्षित स्थान खोजते थे। एक बार बड़े जोर की आग लगी। धू धू करती आग जंगल को जला रही थी। तुम जब भाग कर सुरक्षित स्थान में पहुचे तो वहां और भी पशु थे। तुम से छोटे पशु। लेकिन जब आग लगती है तो पशु तक आपस का वैर भूल जाते है। तुम भी भूल गये। वह सुरक्षित स्थान तुम्हारा खोजा हुआ था, लेकिन उसमे जंगल के सभी जीव खड़े थे.'

'फिर क्या हुआ प्रभू ?'

'खडे खडे तुम्हे खाज लगी। तुम झुक कर खुजलाने लगे। और जब खुजला कर तुम पुन पैर रखने के लिये आगे बढे तो देखा कि वहां एक खरगोश अपनी जान बचा रहा था ! तुम्हे उस निरीह खरगोश के प्रति करुणा उपजी। तुम जानते थे कि यदि तुमने पैर रखा तो उसकी जान चली जायेगी। तीन रोज तक लगातार तुम उस खरगोश की खातिर तीन पैर से खड़े होकर उसका जीवन बचाते रहे। जब दावानाल शांत हुआ तो सब जीव जन्तु अपनी अपनी राह लगे तो खरगोश भी चला गया। तुम्हारा सारा बदन अकड़ गया था। तुम धडाम से गिरे और तुम्हे इतनी चोट आई कि फिर तुम फिर शरीर त्याग कर रानी के पेट मे आ घुसे।

उस अतिशय करुणा के कारण घोर पशु योनि मे भी जो तुमने समभाव दर्शाया तो उसके कारण तुम्हे यह योनि मिली। आश्चर्य है कि पशु योनि मे तुमने जो समभाव दर्शाया अब उस

समभाव से दूर जा रहे हो। क्या यह दीनता तुम्हें शोभा देती है। तुम अहिंसक वीर बने थे। अहिंसक वीर बने रहो। तुम्हारा अस्त्र ही समभाव है। उस अस्त्र को त्यागो। तुम्हारा नाम मेघ है। तुम मेघ के समान ही धीर वीर उदार और गम्भीर बनो। सहन शील समभावी बनो। जो रास्ता, जो पथ तुमने चुना है वह सहनशील समभावी और सेवा धर्मी बनने से ही प्राप्त हो सकता है।'

मेघ राजकुमार के मन की कलुसता धुल गई।

कायरता जैसे मिट गया—

उसने पुनः दीक्षावृति ली और अपना तपोमय अन्तिम जीवन व्यतीत किया—

ऐसा था भगवान का मार्ग जिस पथ पर एक नही अनेक पथिक चलकर अपनी राह लग गये !

भगवान महावीर स्वामी ने जिन सिद्धान्तों का प्रति पादन किया उनमें निम्न बातें भी शामिल थी—

(१) पाप आचरण मत करो।

पांच पापों की चर्चा हम कर चुके हैं।

'पांच पापों को छोड़ने के बाद काम समाप्त नहीं होता, प्रारम्भ होता है। भगवान महावीर ने अपने प्रवचनों मे तीन बातों पर बल दिया था। तीन तत्व थे—

(१) सम्यक् दर्शन।

(०) सम्यक् ।

(३) सम्यक् चरित्र।

सम्यक दृष्टि क्या हैं ?

सर्वज्ञ, अरहंत देवों में विश्वास, धर्म के प्रति आस्था और

अनन्त गुणों के प्रति श्रद्धान ही सम्यक दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि होना आवश्यक है। सम्यक् दृष्टि न होने के कारण बड़े कष्ट सहने पड़ते है।

श्रेणिक बिम्बसार के एक और युवराज का नाम था वारिषेण। उनकी माता थी चेलनी, भगवान महावीर की मौसी। वारिषेण में एक तपस्वी श्रावक के गुण थे। वे अत्यन्त गुणवान और सम्यकतत्वी थे। एक बार उनके कर्म समाप्त होने का समय आया।

चतुर्दशी के दिन उपवास करने के लिये श्मशान में जा विराजे।

उसी दिन एक घटना घटी।

उसी नगरी में विद्युत नाम का एक चोर रहता था।

उसकी प्रेमिका थी नगर वधु सुन्दरी।

विद्युत उस पर जान छिड़कता था। सम्भवतः इसी बात के प्रभाव से उसने एक बार कहा—'राजा—'

'हूं।'

'मुझे प्यार करते हो ?'

'हां।'

'सबूत।'

'आज्ञा दो।'

'अगर प्यार करते हो तो मुझे रानी चेलनी का हार लाकर दे दो।'

'मस्तिष्क ठीक है।'

'बिल्कुल।'

'यह असम्भव है।'

'तो प्यारे मेरा प्यार मिलना भी असंभव है।'

'अजीव बात है।'

'सोच लो।'

प्यार अन्धा होता है। और विद्युत तो था भी विद्युत जैसा चपल। अपने कौशल से आखिर वह हार ले ही आया। हार चुराना आसान था। मगर पचाना नहीं।

रास्ते में कोतवाल ने उसको जगमगाहट से चौंक कर पूछा—'ये क्या है रे।'

'ना कुछ नहीं।'

और वह तेजी से शमशान की ओर भागा। वहा राजकुमार वरियेण तप कर रहे थे।

विद्युत वह हार उनके पास पटक कर चलता बना।

पीछे पीछे सिपाही लोग दौड़ते हुये आये और वह हार राजकुमार के पास बरामद हुआ। कोतवाल चोर को पाकर प्रसन्न हुआ। उसने यही समझा कि हार चुरा कर चोर पाखन्ड कर रहा है। उसे पकड़ कर न्यायालय में पेश किया। श्रेणिक बिम्बसार सोच रहे थे कि ऐसा कैसे हो सकता है कि बेटा मां का ही हार चुरा ले। मगर समस्त गवाहिया उसके खिलाफ पड़ रही थी। और न्याय कहता था कि यदि प्रमाण मिलते है तो अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिये। अपराधी को दण्ड दिये जाने का विधान है।

महाराजा श्रेणिक बिम्बसार ने मृत्यु दण्ड दिया। वे न्याय की तुला के समक्ष बैठे थे। पुनीत न्याय तुला की शपथ लेकर बैठे थे। हृदय कड़ा कर श्रेणिक बिम्बसार ने वारिषेण को चान्डालो के हवाले कर दिया।

चान्डाल वध के लिये श्मशान ले गये।

मगर यह क्या !

वध के लिये हाथ नही उठ रहा था।

फरसा नही उठ रहा था।

एक देव, मगध की इस न्याय व्यवस्था को देखकर प्रसन्न हो उठा। उसने राजकुमार वारिषेण पर पुष्प वर्षा की।

पुष्प वर्षा।

और हत्या की निवरता।

यह चर्चा सवत्र फैलती चली गई।

श्रेणिक बिम्बसार स्वय वारिषेण के निकट आये। आकर बोले—'वत्स, हमे विश्वास था कि तुम चोरी नही कर सकते। मगर न्याय तो अन्धा और बहिरा होता है। वह केवल सबूत देखता है। और वे सबूत कहते थे कि तुमने चोरी की है। भगवान की अनुकम्पा है कि तुम निर्दोष पाये गये। हम तुम्हे लेने आये है पुत्र चलो चलें !'

'नही।'

'क्यो बेटा।'

'कौन बेटा और किसका बेटा।'

'यह क्या कह रहे हो पुत्र।'

'बिल्कुल ठीक कह रहा हू। संसार मे न कोई किसी का पिता है न माता। सब स्वार्थ के नाते है। मैं श्मशान मे भक्ति कर रहा था। और यह चोरी का आरोप मेरी नजर मे उपसर्ग था। मैंने निश्चय कर लिया था कि यदि इस उपसर्ग से बच गया तो निश्चय ही मैं भगवान के परम पद के लिये महावीर स्वामी की शरण मे जाऊंगा।'

'तो अब...।'

'मैं भगवान महावीर के संघ का मुनि सदस्य बनूंगा।'

'धन्य है।'

माता-पिता दोनों ही पुत्र के इस निश्चय पर फूले नही समाये। वह जानते थे कि वारिषेण दृढ़ निश्चयी व्यक्ति है यह सही है कि उसकी पत्नियां अनुपम तेजोमय और सुन्दर है, मगर जो व्यक्ति परम पद मोक्ष का उम्मीदवार बने उसके लिये शपथ का बड़ा मूल्य है। कहा गया है कि वृत भंग होने की अपेक्षा अग्नि प्रवेश ही ज्यादा श्रेस्कर है। शील से व्रत को नष्ट करके जीना किसी काम का नही है।'

वारिषेण ने प्रभू का मार्ग स्वीकार कर लिया।

८ महावीर स्वामी ने कहा था
महावीर स्वामी और आज का विश्व

महावीर स्वामी के पावन उपदेशों का मनोबल आज भी इस दुखमा सुखमा मात्र के प्राणियों को अतिशय बल दे रहा है।

जितनी जरूरत महावीर स्वामी के पावन उपदेशों की आज है उतनी कभी नही रही। यू हमेशा रही अन्धेरे मे चमकती एक प्रखर लौ की भाति महावीर स्वामी का दिखलाया हुआ मार्ग प्राणीमात्र को मुक्ति की राह पर चलाता आ रहा है। हर क्षण लगता है कि महावीर स्वामी का पालन उपदेश हमे पथ दिखला रहा है। पथ है अहिंसा का, पथ है मानव मात्र की दया का!

हर प्राणी—
देव हो या नर!
पशु हो या त्रियेयगति का जीव।
थोर यास्थावर!

हर व्यक्ति प्राणी। हर जीव एक सी पीड़ा महसूस करता है। हर एक का एक ही लक्ष्य है, मुक्ति!

मुक्ति, मुक्ति...

ससार के आवागमन से छुटकारा। मानव मात्र के प्रति दया का व्यवहार और कर्मों का निष्कासन, कर्मों से दूर, दुष्कर्मों से दूर...

महावीर स्वामी का पथ कठिन पथ है। मगर बहुत बहुत पथ

बहुत सुन्दर और मनोरम पथ। यूं अहिंसा का रास्ता भगवान बुद्ध ने भी दिखलाया था—

मगर उनकी दया सीमित थी मानव मात्र तक।

पशुओं पर दया करना महावीर स्वामी ने ही सिखलाया और आज जब विश्व दुखमा-सुखमा काल के अन्तंगत फैशन, भ्रष्ट आचरण की चरम सीमा पर बढ़ रहा है तो भगवान महावीर स्वामी का पथ और आलोकित कर रहा है, विश्व के प्राणियो का भारत में ही नहीं भारत से बाहर भी महावीर और जिन देवके असंख्य अनुयायी नित्य महावीर स्वामी के उपदेशो पर चलने का प्रयास कर रहे है।

— झूठ नही बोलना।

— चोरी नहीं करना।

— धन संग्रह नही करना।

— मानव मात्र के लिये नहीं सबके लिये प्राणीमात्र के लिये दया का प्रचार करना ही सबसे बड़ा धर्म बन रहा है। तभी तो जगह जगह वे लोग जो पशु मांस खाते नही अघाते थे। आज शाकाहारी होने का व्रत ले रहे है। प्रकृति की ओर लौटते हुये ये विश्व के जीव प्रकृति के रक्षक बनने का प्रयास कर रहे है, और महावीर स्वामी का वह सार्थक उपदेश कित्रियेय गति का जीव भी परमेष्ठी कि महान पद को प्राप्त करके संसार के आवागमन से मुक्त हो सकता है, आज के प्रजातंत्र युग की पहली मजबूत बुनियाद है। मगर अभी हम, विश्व और विश्व के प्राणी भगवान महावीर कि बतलाये मार्ग पर चल नहीं पा रहे है। इसका महज कारण है हमारे कर्म, हमारे जीवन में आये हुये दुष कर्म, कषाय और पाप।

पाप मुक्त होना है।

कषाय से दूर होना है।

और दुष्कर्मों के उदय को रोकना है।

महावीर स्वामी के इस पथ का अनुसरण करने वाला हर जीव चाहे वह त्रियेग गति का होया देव, एक समान अधिकार रखता है कि वह आवागमन के कष्टों से मुक्ति पाकर आत्मा मे लीन हो जाये।

आत्म विश्वास का इससे बड़ा विवेचन और क्या हो सकता है कि हम सब केवल अपने पापो और कर्मों के कारण छोटे या बड़े हैं। हमारा जीवन पाप, कर्म, और कषाय ने अतिरंजित कर दिया है, अन्यथा हम एक ही शक्ति के पुन्ज है, जो मोक्ष गति की और अग्रसर हैं। महावीर स्वामी के इन पावन उपदेशो का सार आज पूरे विश्व को ग्रहण करना है, और यदि विश्व के प्राणी मात्र इस उपदेश को ग्रहण कर लें तो न कोई भूखा रहे व नंगा। न छोटा रहे न बड़ा। न सीमा के लिये युद्ध हो न रक्तपात।

परिग्रह न करने के कारण उन सभी प्राणी मात्र की रक्षा हो सकती है, जिनको नित पीड़ा दी जाती है। मांस के लिये पशुवध, अधिक मुनाफे के लिये मिलावट और अधिक मुल्क समृद्धि के लिये राजनैतिक उखाड़ पछाड़ मे विदेश मे होने वाला रक्त पात रूक सकता है। पासू कृन्दन भगवान महावीर के मार्ग मे वर्जित है। भगवान महावीर के उपदेश विश्व को सिखलाते है—

संयमी जीवन जियो।

इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखो।

केवल इन्द्रियो के स्वाद के लिये न किसी को पीड़ा पहुंचाओ

न त्रास दो। न वध करो।

परिग्रहण से बचो! आपकी संचित सामग्री का उपभोग आपके लिये नही, उन बेसहारा लोगों के लिये है, जो इन सुविधाओ के लिये तरस रहे है। उनकी पीड़ा को समझ कर उनको यथेष्ट सम्मान और सुख मिलना ही चाहिये। वे हमारे सुख के सबसे बड़े साझीदार है।

संसार भर के बड़े राष्ट्र केवल अपने देश वासियों के स्वार्थ के लिये अपने आपको बड़ा बताने के लिये ऐसी राजनैतिक विचार धारा का शोषण कर रहे हैं, जो विश्व को विश्वयुद्ध के कगार पर ला सकती है। कोरिया और वियतनाम इसके साक्षात उदा-हरण हैं।

भगवान महावीर स्वामी का उपदेश ग्रहण करके विश्व इस भयपूर्ण विश्वयुद्ध से बच सकता है और हर प्राणी अपने आप एक संयमित जीवन जीकर अपने कर्मों को नष्ट करके सफलता की एक-एक सीढ़ी चढ़कर परमपद पर पहुंच सकता है।

इन उपदेशों को सुदूर विश्व के कोने-कोने मे पहुंचने से प्राणीमात्र की रक्षा हो सकेगी। सांसारिक सुखी जीवन भोग कर परमपद की प्राप्ति हो सकती है। क्योंकि भगवान महावीर स्वामी के उपदेशों का सार प्राणीमात्र पर दया भाव रखने में है जहाँ जहां विश्व दुखमा-सुखमा काल को पहुंच रहा है।, शारीरिक सुख की होड़ बढ़ रही है। फैशन बढ़ रहा है। और वहां प्राणी में दया नहीं, परिवार का सुख नहीं शान्ति नहीं अशान्ति का साम्राज्य फैल रहा है।

—दूर पश्चिमी देश।

—सभ्यता के नाम पर नग्नता का राग अलापने वाले देश।

शान्ति के नाम पर युद्ध का आश्रय देने वाले देश आज इसलिये मानसिक रूप से दुखी है, संत्रस्त है, वहा हर साल प्रकृति के प्रकोप होते है, भीषण हत्या कान्ड होते है, क्योंकि वहा कर्मों का उदय बड़ी तेजी से हो रहा है।

दुष्कर्म—कषाय और पाप पूरित कर्म। इन कर्मों से बचने का एक ही मार्ग है—पापों को दूर करने का एक ही रास्ता है कि विश्व महावीर स्वामी के उनसद् उपदेशों को ग्रहण करे जिनसे वह वंचित है। और जिनके बगैर उसे भयकर त्रासका जीवन जीना पड़ रहा है।

पूरे विश्व के सामने एक ही मार्ग है कि वह महावीर स्वामी के बतलाये उस मार्ग पर चले जिसमे पाप नही कषाय नही कर्म नही केवल है स्वाधाय सयम। अपूर्व त्याग महान् बलिदान और आत्म सिद्धी का मार्ग इसी मे विश्व का कल्याण है।

प्रभु वाणी का अमृत ही इस
असार संसार का सार है
इस दुखी भूमन्डल पर शान्ति
और सुख का प्रकाशदीप है।

भगवान महावीर स्वामी की कल्पना करते वक्त आंखो के सामने एक अतभूत अहलादकारी दृष्य खिच जाता है। भगवान् महावीर की प्राप्त मूर्तियां तो उनके रूप को चित्रित करती ही है, यदि थोड़ा सा चित् ठिकाने करके उस रूप की कल्पना की जाये तो मन गद्‌गद् हो जाता है। कल्पना कीजिये उषा काल की—

दूर क्षितिज मे सूरज उदय हो रहा है।

नदी का प्रवाह, धीमा, मन्थर होते हुये वीणा के तारो की भांति झकृत हो रहा है।

प्रातः काल :—

अर्थात् पक्षियो के कलरव से भरपूर एक सुहानी सुबह जब बसेरा लिये पक्षी उड़ते है भोजन की खोज मे और बसेरा लिये यात्री प्रस्तुत होते है नई यात्रा के लिये·· ऐसे क्षणो में सघन साल वृक्ष के नीचे प्रफुल्लित मुख लिये एक पुरुष श्रेष्ठ मग्न खड़े हैं। अर्न्तदृष्टि से व्याप्त उनके व्यस्त नेत्र किसी ओर नही जाते। और उस स्थान से गुजरने वाले व्यक्ति पूछते है। 'कौन हैं ये ?'

'कुन्डलपुर के राजकुमार।'

'राजकुमार।'

'हां।'

'हाय। क्या रूप है। इन्होंने सन्यास क्यों लिया है!'

'स्वेच्छा से।'

'यानी कोई दुख नहीं।'

'नहीं।'

कोई परेशानी नहीं।

'बिल्कुल नहीं—' उत्तर दिया जाता है इन्हें संसार के सभी सुख प्राप्त थे। स्वेच्छा से सन्यासी बने हैं।'

'स्वेच्छा से कौन सन्यासी बनता है?'

जिन्हें परलोक, इहलोक सुधार कर मोक्ष की कामना होती है—'

इस उत्तर मे वाकई मे सार है।

भगवान वर्द्धमान का संसार कुछ ऐसा ही था। उन्हें कोई सांसारिक दुख नहीं था। कोई पीड़ा नहीं थी। वे राजघराने मे जन्मे थे और एश्वर्य की गोद में पलकर बड़े हुए थे। स्वेच्छा से सारी सम्पति का दान करके अंकिचन रहने का व्रत लिया था। क्योंकि वे ये महसूस करते थे कि संसार जो भोग क्षेत्र और कर्म क्षेत्र दोनो है। केवल अज्ञान ही गहरी गुफा है। उनके अनु-सार समस्त लोक मोह अन्धा हो रहा है। वे सोचते थे इस लोक मे केवल वे ही धन्य हैं जिन्होंने तृष्णा रुपी विषबेल को उतार कर फेंक दिया है। जीव और नाश पतन की ओर बढ़ रहा है। उसके इस पतन को रोकने की सामर्थ किसी में भी नहीं है। न भार्या में न बंधु वर्ग में।

मोह हमारे जीवन की सबसे बड़ी विषबेल है—भगवान महावीर ने इस बात को एक तरह नहीं हर तरह, हर प्रकार से

स्पष्ट किया था। महावीर स्वामी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि जो कुछ हम सोचते हैं, करते हे उस सबका परिणाम हमको भुगतना ही पड़ता है और सम्भवतः यही सोचकर उन्होने इस संसार को त्याग करके इन तत्व उपदेशो को पुष्ट किया था कि:—

केवल सर्वज्ञ और सर्वदर्शी ही दिशा भ्रमित सांसारी जीवो को उपदेश दे सकती है।

ऐसा उपदेश ही सत्य उपदेश हो सकता है।

समाज निर्माण करना है तो उसका आधार स्तंभ व्यवित ही है। केवल पुरुष अथवा स्त्री ही ऐसी मौलिक इकाई है जिसके कारण समाज बनता, बिगड़ता अथवा विकसित व पतनशील होता है।

अतः व्यक्ति का सुधार ही समाज सुधार है। जब तक व्यवित अपने आपको सतुलित नही करता उसे कोई राह नही मिल सकती व्यवित के सुधार से ही उसकी आत्मा का सुधार होता है और उस सुधार से ही वह अपने जीवन को उन्नत अथवा अवनती की राह पर डालता है।

जिन बातो को आविष्कार करके आज हमारे समाज शास्त्री समाज नेता और समाज सुधारक फूले नही समाते उनको अपनी खोज मानते है। वे बातें कार्य के रुप में भगवान महावीर ने आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व कह दी थी।

ढाई हजार वर्ष......

जब ईसा नहीं हुए थे।

साम्राजाओं संसार बना और मिटा। लोग आये और चले गये।

किसी ने सच कहा है, समय भागते हुये घोड़े के उन सिर के वालों की भांति होता है जिसे पकड़ा नहीं जा सकता। समय नही रुकता घड़ियां टिक टिक करते घन्टे घनघनाते आगे ही बढ़ते चले जाते हैं। महावीर स्वामी की पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी का समारोह आयोजन करने की तैयारी विश्व कर रहा है उनकी वाणी उनके उपदेशों का अमृत आज भी उतना गरिमामय पावन और पवित्र है जितना उस समय था बल्कि आज के युग में जब दुखमा-सुखमा काल चल रहा है तो भगवान महावीर स्वामी के उपदेश अधिक सारमय हो गये हैं। कवि वर्ग ने महावीर स्वामी के अवतरण को शरद ज्योत्सना के अवतरण की संज्ञा देते हुये कहा है कि जिस प्रकार शरद ज्योत्सना का प्रभाव उसका रूप और उसकी परिणति सभी कुछ सुखद होती है उसी प्रकार महावीर स्वामी का प्रादुर्भाव महावीर का आगमन उनकी वाणी, उनके उपदेश, उनकी स्याद्वाद ही शरद ज्योत्सना की भांति निर्मल स्वच्छ और आनन्ददायी है।

महावीर स्वामी को स्वतन्त्रता का प्रथम सेनानी कहना चाहिये। रूढ़ि और गलत परम्परा का सशक्त विरोधी एक सबल सेनानी जिन्होंने ढाई हजार साल पूर्व ही अपनी मधुर महान् वाणी से कहा था—'मानव तो क्या कोई जीव भी न किसी का अच्छा कर सकता है न बुरा ! सब स्वच्छन्द है। सब स्वाधीन है पराधीन है तो सिर्फ अपने ! अपने कर्मों के आधीन होकर मनुष्य सुख या दुःख पाता है मनुष्य से देवता अथवा तिर्यन्च और नरक की गति का जीव बनता है।

अतः महावीर स्वामी का यह कथन शतप्रतिशत सही है कि

प्राणी मात्र ज्ञान का सहारा ले। ज्ञान के आश्रय में आने पर पता लगेगा कि :—

(क) काल कौन सा है ?

(ख) उसका कौन सा जन्म है ?

(ग) उसका निजि क्या है ?

(घ) उसका आचरण क्या है ?

(च) हितकारी कर्म क्या क्या है ?

(छ) उसका भविष्य कहां सुरक्षित है ?

(ज) उससे अलग और क्या क्या है ?

इन प्रश्नो का सही उत्तर पाने पर ही प्राणी मात्र अपनी हितचिन्तना कर सकता है। जान सकता है कि उसे क्या करना है। कब करना हे और कैसे करना है। आपने देखा होगा कि समय आने पर ही कुछ कार्य सम्पन्न होते है। जैसे वक्त आने पर ही सही समय पर डाला हुआ बीज फल देगा। अथवा नही। उसी प्रकार यथा समय किये गये कर्म ही जन्म और मृत्यु के आवागमन से मुक्त कर सकते है।

महावीर स्वामी का उद्देश्य किसी नये धर्म की स्थापना करना नहीं था। उन्होने तो उन्ही सिद्धान्तों की स्थापना की थी जिसे उनसे पूर्व २३ तीर्थंकर कर चुके थे।

महावीर स्वामी ने इस मूल तत्व की स्थापना की कि देह के साथ देही का अन्त होता है, ऐसा लगता है। शंका हो सकती है कि देही (आत्मा) है क्या ? उसे किसने देखा है। उन्होंने कहा—यद्यपि स्थूल नेत्रों से आत्मा दिखाई नहीं देती। क्योंकि न तो उसका कोई रूप है न उसका कोई रस न उसमे कोई गंध आती

है और न ही उसका कोई रंग है । परन्तु मानवी अनुभव उसका अस्तित्व प्रमाणित करते है। आत्मा शरीर से अलग है क्योंकि वह पंच भूतो की उपज नही। शरीर तो पंच तत्व का है। जल, वायू पृथ्वी, अग्नि और आकाश। मगर इनमें से कौनसा पदार्थ चेतन है। किसमे जानने देखने का गुण विधमान है। जब इसमें वह गुण नही तो फिर उसमे जिनको यह बनाती है। यह गुण कैसे आ सकता है।

महावीर स्वामी ने एक सबमे महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि विश्व में जो वस्तु हैं उसका कभी विनाश नही हो सकता। जो वस्तु नही है उसका कभी अस्तित्व नहीं हो 'सकता ।

आत्मा कि विषय मे उन्होंने कहा—

'नाश देह का होता है। शरीर का नही ! देह पुद्गल है और देही चेतन जब शव का दाह सस्कार होता है पुद्गल पुद्गल ही रहता है और चेतन लोक में दूसरा शरीर धारण कर लेता है।

'अगर ऐसा नही हो तो जानते हो क्या होगा ?'

'मनुष्य का ज्ञान भी खटित हो जाये ?'

मनुष्य का ज्ञान भी पांच भागो मे टूट जाये। ऐसा नही था। ज्ञान अखन्ड है और उसका अनुभव भी एक अखन्ड वस्तु करती है।

अब एक शका उठती है कि आत्मा पहले थी या नही।

जीवात्मा यदि लोक भ्रमण नही करती होती तो नवजात शिशु अनायास ही माता के स्तनो का पान कैसे करने लगता।

क्योंकि यह उसके पुराने जन्म का संस्कार है।

और इन्द्रियों का आभास आत्मा ही पाती है। अनादि काल से पुद्गल के बन्धनों में पड़ा हुआ शरीर में कैद हुआ जीव शुभाशुभ कर्म कर रहा है। जीव ने पूर्व जन्म में कर्म किये थे और इस जन्म में भी कर्म संचित कर रहा है। इन संचित कर्मों का अच्छा या बुरा फल वह स्वयं भुगतता है और सुखी या दुखी बनता है।

व्रत उपवास और तपस्या के द्वारा इन कर्मों की निर्जरा हो जाती है और शरीर बन्धन मुक्त हो जाता है। जब मन वचन काय द्वारा जीव संवर अवस्था को प्राप्त हो जाता है तो कर्म संचित नहीं होते और संचित हुये कर्मों का तपस्या से नाश हो जाता है। इस प्रकार के कर्मों के आने के रुक जाने से और पुराने कर्मों के क्षय हो जाने से संसार का आवागमन छूट जाता है।

कर्म आना दुख आना है।

कर्म क्षय ही दुख क्षय है।

जब दुख मिटता है तो वेदनाये मिटती है और वेदना के मिट जाने मे सब दुखों की निर्जरा हो जाती है।

एक प्रश्न भगवान महावीर स्वामी से अक्सर किया जाता रहा था कि—भगवन! आप एक राजकुमार थे। आपको सभी सुख एवं सुविधायें उपलब्ध थी। फिर भी आपने मुनि व्रत धारण किया। आखिर क्यो? युवावस्था में तो हर एक ही आनन्द भोगता है। आपको भोग एवं उपयोग की सामग्री उपलब्ध थी। फिर आपने उसे क्यो नही भोगा।'

भगवान महावीर ने इसका उत्तर देते हुये बतलाया था कि जिसे आनन्द और भोग कहा जाता है, वास्तव में वो नाशवान बड़ी

है वही है नाश की जड़ ! जवानी में दीवाना बनकर जो भोग अथवा इन्द्रिय सुख उठाता है, वह वास्तव में अपना सबसे बड़ा अहित करता है जानते हो दुनियां मे सारे झगड़े काहे पर होते हैं। कंचन और कामिनी। (जर और जोरू)। तो जो झगड़ा कराये उसमें सुख कैसा। और इन्द्रिय सुख तो उस तलवार की धार पर पड़े शहद की भांति होता है जिसे लालच करके व्यक्ति चाटना तो है, मगर हर क्षण उसे जान का खतरा पड़ा रहता है।

जो सार को सार उपादेय को उपादेय और असार को असार मानते हैं वही सार के अधिकारी है, यूं इस ससार में बड़े-बड़े कैद खाने बन्धन है। मगर वास्तविक बन्धन तीन है:—

(१) धनासक्ति

(२) स्त्री मे आसक्ति

(४) पुत्र सम्पति की कामना आसक्ति

पर जरा ध्यान दीजिये । धर क्या है । मूल्य न हो तो कुछ भी नही। और स्त्री—उसका अन्त बुढापे से होता है, और जब मृत देह सूख जाता है तो उसमें आशक्ति नहीं रहती।

धन स्वर्ण और रूप सुन्दरी वास्तव में उस सीमा तक ही सुहाते है। जब तक इन्द्रिया वश में नही होती जब इन्द्रिया वश में हो जाती है तो यह सुख साधारण दुख में बदले दिखलाई पड़ते हैं रोगी व्यक्ति खोज मे आनन्द लेता है उसी प्रकार पित्त के बुखार ग्रस्त व्यक्ति को लड्डू अच्छा लगाता है, रोग मे तो वह और भी अच्छा लगने लगता हैं। मगर क्या वे हितकारक होते है, नहीं वे हितकारी नही होने कुत्ता हड्डी चूसता है। खून निकल आता है। वह उसी खून को चूसकर आनन्द लिये जाता है। इन्द्रिया क्या है ?

ये वास्तव में क्षणिक सुख हैं। इस प्रकार महावीर स्वामी अपनी वाणी से उन सभी बातों की प्रति स्थापित स्थापना की ज प्राणी मात्र के लिये आवश्यक है महावीर स्वामी प्राणी मात्र स्वतन्त्रता हामी थे। वे हर प्राणी की स्वतन्त्रता के इतने ब समर्थक थे, कि उनकी सहन शक्ति भगवान बुद्ध से भी बड़ी च थी। भगवान बुद्ध का क्षेत्र था सिर्फ मानव समुदाय और महावी स्वामी का क्षेत्र था, चर अचर, गोचर अगोचर, अगम, ती गतियों।

उन्होंने उन सिद्धान्तों की व्याख्या की जो सनातन जिन के सिद्धान्त थे। भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान पार्श्वन तक सभी तीर्थंकरो ने इन्हीं आदर्शों की प्रतिष्ठा और प्रति स्थाप की थी। भगवान महावीर ने कहा था—'जियो और जीने दो इस सिद्धान्त को इस शानदार ढंग से लागू किया गया कि उन दृष्टि में नर और कुंजर और चींटी सब एक समान थे। कवि उसी व्याख्या को चित्रित करते हुये लिखा है।

राजारानी छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार॥

जब इस देह को समाप्त होना है तो फिर इसका मोह क्यों देह का मोह नहीं रहेगा तो मनुष्य मोह छोड़ देगा। इन्हीं महावीर स्वामी ने परमोत्कृष्ट करने के लिये शुद्ध भावनाओं मन मे स्थान देने का आग्रह किया है ये भावनायें है—

(१) आत्मा है इसका अनुभव करो और इसमें निरंतर प्र करते रहो।

(२) आपकी आत्मा से बड़ी आत्मायें इस संसार में विद्य है, उसका समुचित आदर करो।

(३) ब्रह्मचर्य का पालन करो। संसार में आपकी पत्नी

आपके लिये है। शेष महिलायें मां की तरह पूजनीय है। उनका आदर करो।

(४) आत्मज्ञान स्थिर को रखने के लिये पठन पाठन में निरन्तर रूप से लगे रहना चाहिये। इससे ज्ञान की वृद्धि होती है।

५) आत्मा की सत्ता स्वीकार करने के बाद संसार की सभी वस्तुएं विनाश की ओर ले जाती है, इसलिये केवल ज्ञान की सत्ता में विश्वास करते हुये संसार से विरक्त रहना।

(६) विरक्त रहने के लिये आवश्यक है त्याग, क्रोध मद, मोह लोभ आदि कसायों से अपने आपको अलग रखना ही श्रेयस्कर है, भगवान महावीर का कथन था कि अचिन्त प्रवृत्ति होना ही सबसे आवश्यक कार्य है।

(७) आत्मा का अनुभव कर लिया। महान् आत्माओं का आदर कर लिया। ब्रह्मचर्य का पालन भी हुआ। संसार से विरक्त भी हो गये। विरक्त होने के लिये त्याग भी कर लिया। मगर इन सब को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है तप। तप क्या है? इन्द्रियों का निरोध और अपहेत मे लवलीन होना।

इस प्रकार हम इन सात बातों को इस प्रकार भी कह सकते है—

(क) आत्म अनुभव (ख) विनय (ग) शील
(घ) शौच (च) ज्ञान (छ) समवेग
और तप

तप की कई सीढ़ियां है जैसे—
(अ) अभ्यास

पहुंचाओ । न उन्हें मारो न पराधीन करो ।

भगवान महावीर के जीवन दर्शन का दूसरा सूत्र है कि हर जीव अपने जीवन का स्वयं निर्माता है । वह अपने जीवन को जैसा चाहे वैसा बना सकता है । उसका स्वभाव आजाद रहने का है, अतः उसे स्वाधीन ही रखिये ।

ऐसी मनोरम, मन को अथाह शान्ति में ले जाने वाली वाणी का अक्षरो मे लिखा पावन उपदेश जब तक इस धरती पर चांद सितारों की सृष्टि है मनुष्य का मार्ग दर्शन करता रहेगा ।

१० महानिर्वाण का पथ
कर्म गति से दूर है मुक्त
आकाश और स्वच्छन्दता से
भर पूर खुला है महा मुक्ति
द्वार:

भगवान महावीर के कर्म धीरे धीरे छूटते जा रहे थे। सर्वज्ञ, केवल ज्ञानी कर्म शून्य होते जा रहे थे और यह निश्चित था कि आयु कर्म छूट जाने के बाद भगवान पावन परम मोक्ष गति को प्राप्त होगे। मोक्ष गति का अर्थ है मुक्ति। यूं तो हर व्यक्ति जो इस ससार मे आया है वह अपनी आयु के बाद इस संसार से विदा लेता है। लेकिन एक तो विदा ली जाती है एक शरीर से दूसरे शरीर मे जाने के लिये। एक भव से दूसरे भव में जाने के लिये। मगर भगवान महावीर स्वामी का इस संसार से विदा लेने का अर्थ था कि सदैव के लिये इस संसार के आवागमन से मुक्ति। भगवान महावीर साधुओं के संघ सहित एक स्थान पर तो रहते नहीं थे। निरन्तर घूमने रहना ही उनका लक्ष्य था। भगवान महावीर अपने गणधर समेत आखिर एक दिन उस निर्दिष्ट स्थान पर आ ही पहुचें जिसे इतिहास में अमर होना था।

बिहार प्रान्त का पवित्र स्थान पांवापुर।

उस वक्त उस स्थान की रूपभी देखने योग्य थी। प्रकृति

ने नया शृंगार किया था। वीथी वीच लहलहाता सरोवर बड़ा ही सुन्दर था और चारों ओर विकसित था राजकीय उद्यान मनोहर।

भगवान महावीर उसी उद्यान में विराजे।

उन दिनों पावापुर के राजा थे हस्तिपाल। शुभ आगमन की काफी दिनों से बाट देखी जा रही थी। स्वयं भगवान महावीर पधारे है इससे बड़ी बात क्या हो सकती है।

दर्शनों की पियासी जनता उमड़ पड़ी।

राज मार्गों को स्वच्छ किया गया था। सुगन्धित जल से धुले राज मार्ग स्वागत में की गई सजावट और दूर तक सुगन्ध वातावरण राज परिवार सहित जनता ने भगवान की वन्दना की।

और भगवान महावीर···

उनके तीर्थंकर सिद्ध और केवल ज्ञानी होने का प्रभाव चहुं ओर सब तरफ व्याप्त था।

सिंह और हिरण एक घाट पानी पियें। दूर दूर तक हिंसा का नाम नहीं।

सब ओर सुख ही सुख···

घोर सुख व्याप्त था।

सुवासित पवन मन्द मन्द मुस्कान के साथ किसी होने वाले महान् कार्य की सूचना दे रहा था।

भगवान महावीर के समस्त कर्म निर्मूल हो गये थे।

कार्तिक कृष्णा की चतुर्दशी आ पहुंची। रात्रि के अन्त समय जब चन्द्र स्वाति नक्षत्र पर था तो भगवान जो सब समोशरण को छोड़कर एकान्त में ध्यान चिंतन हो रहे थे, मुक्ति पद को प्राप्त

हुये।

देवताओं को अवधिज्ञान से ज्ञान हुआ कि भगवान, महावीर को मोक्ष प्राप्त हो गया है। सब ने इस मगल पर्व पर खुशियां मनाकर, महावीर स्वामी को नमस्कार करके उनके पवित्र पार्थिव शरीर को अभ्यर्थना की।

कृष्ण पक्ष की काली रात अनायास ही प्रकाश पुन्ज से फट पड़ी। चारो ओर जगमगाता, पंजी भूत प्रकाश फैल गया। उस वक्त विधमान सभी चराचर ने उस पूंजी भूत प्रकाशवान ज्योति को सहज और महान श्रद्धा से देखा। वह एक दिव्य आलोक की भांति एक प्रत्यक्ष अनुभव था। स्वयं धनेन्द्र ने आकर भगवान की वन्दना की। उनके शरीर की अन्येष्ठी करके उस स्थान पर स्तूप बना दिया।

उत्तरी भारत के अठारह गणराज्यों समेत काशी कौशल नरेश नो मल गणतन्त्र राजसंघ, और नो लिच्छवि गणराज्य के राज्यो मे इस पवित्र पर्व पर दीपमालिका जलाकर, पवित्र घी के दीपक जलाये और अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। तब से लेकर अब तक भगवान महावीर के इस पावन परम चरम पद की प्रति के उपलक्ष मे समूचे भारत मे प्रति वर्ष कार्तिक कृष्ण पंचदशी को, अमावस्या की काली रात को दीपमलिका का उत्सव मनाकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करती है।

मगर वह दीपावली तो कुछ और ही ढंग की रही होगी, जब भगवान महावीर ने पावापुर मे मोक्ष पद प्राप्त किया था।

, आज पावापुर, अपापनगरी अतिशय श्रद्धा से भनी भूत तीर्थ क्षेत्र मे परिवर्तित हो गया है।

पच्चीस शताब्दी से निरन्तर भारत और विदेश की जनता पावापुर जाकर भगवान महावीर को अपना प्रणाम प्रेषित करती है।

श्रद्धा युक्त होकर उस रज को माथे से लगाते है जो भगवान के आगमन से तो पवित्र हो ही गई थी, साथ ही उनके निर्वाण से उसकी गरिमा मे चार चांद लग गये।

भक्तों ने इस नगरी का नाम रखा है अपाप नगरी। जहां पहुंच कर पाप अपने आप नष्ट हो जाते हैं। निर्वाण क्षेत्र की तो महिमा ही अलग है जलमंदिर के महाद्वार तक पहुचने पर ही भक्त अनुपम शान्ति महसूस करता है।

पावापुर का यह तीर्थ धान के खेतो के बीच लहलहाता कमल के सरोवर के बीच स्थिति जल मन्दिर की शोभा देखने योग्य है। पावापुर का यह तीर्थ जहां भगवान महावीर के पावन चरण चिन्ह विधमान हैं। एक ऐसे तालाब के बीच मे स्थित है। जिसके पानी में मछलियां स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करती है। कमल की इस सुन्दर तालाब मे जहां कमल ही कमल है। उस पुल द्वारा पार करके भगवान का पवित्र मन्दिर आता है। एक छोटे से प्रकोष्ट मे भगवान महावीर के चरण चिन्ह बीच वाले खाव मे चिन्हित है। दांये बाये उनके विशिष्ट गणधर इन्द्रभूति गणधर और सुधर्म स्वामी की चरण पादुकायें प्रतिष्ठित है। इन पवित्र चरण चिन्हों को देखकर दूर और पास से आये यात्री को अपूर्व सुख मिलता है। भगवान के चरणों में बैठ कर उसे शांति का आभास होता है, जो परम पद की छांह का छोटा सा आभास प्रस्तुत करती है, और स्मृति हो आती है आज से पच्चीसवीं शताब्दी पूर्व के भारत की। जब पशु हिंसा, धर्म के लिये थी। लोग

पाप करते थे और यज्ञ में पशुओं की बलि देकर समझते थे उनके पाप क्षमा हो गये है। तब एक आशा की किरण कुन्डलपुर में दिखलाई पड़ी।

भगवान महावीर का आगमन।

आगमन से पूर्व माता त्रिशला प्रियकारिणी को सोलह शुभ स्वप्न।

भगवान महावीर का जन्म।

उनका शैशव !

सुखद राजसी भोग।

विवाह के लिये आये प्रस्ताव और माता त्रिशला प्रिया कारिणी का प्रफुल्लित होना।

भगवान महावीर का विवाह के प्रति दृष्टि कोण और गृह त्याग।

बारह साल का तपोमय जीवन।

बीच बीच मे आने वाले उपसर्ग। परेशानियां और उनमे केवल मौन व्रत। सहज समभाव। इन्द्रियो का दमन और दमन।

—अन्तत. केवल ज्ञान की प्राप्ति।

—महावीर महासंघ की स्थापना।' बारह गणधरो की नियुक्ति और प्रथम बार महिलाओ एव शुद्रो के साथ सरल और सौम्य व्यवहार।

—कौन भूल पायेगा चन्दना के उद्धार को और कौन भूल पायेगा उस भारत दिगविजय को।

भगवान महावीर स्वामी के शुभ चरण जहां जहां पड़े, पर से हिंसा पाखन्ड और पाप समाप्त हो गये।

पाखंड और विमूढ़तायें जो अब तक देश को, जनपद को देशवासियों को जकड़े हुये थी उनका विनाश हुआ और सद्बुद्धि, सद्भाव उभर कर आया।

भगवान महावीर ने महान चरित्र के मापने के लिये तीन माप प्रस्तुत किये थे:—

(क) शारीरिक बल

(ख) नैतिक चरित्र

(ग) मानसिक उन्नतता

और भगवान महावीर के ऊपर यह तीनों ही उत्कृष्ट ढंग से लागू होती है। महावीर स्वामी ने ही प्रथम बार जाति पाँति का बंधन तोड़कर हर अनुयायी को सम्मानित श्रावक का दर्जा दिया। भगवान महावीर के बताये पथ पर चल कर हर श्रावक, हर प्राणी मोक्ष को प्राप्त हो सकता है। उन्होंने डंके की चोट पर कहा था।

संसार सारा का सारा मोह से भरा है मगर वे धन्य हैं जिन्होंने तृष्णा रूपी विषबेल को जड़ से उखाड़ फेंका है। शरीर और आत्मा दो अलग अलग हैं। जो इन दोनों को एक समझते हैं, वे ही गलती करते हैं। इन्द्रिय सुख मनुष्य को कर्मों की ओर खींचता है और ज्यों ज्यों लालसा बढ़ती है त्यों त्यों प्राणीमात्र पाप पंक में फंसता जाता है।

इन्द्रिय सुख की तृप्ति दुख का उद्गम है। संयम, पाप से मुक्त हो जीवन आत्मा को परमात्मा के निकट पहुंचाता है। जीव परमात्मा का ही स्वरूप है और उसमें अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख भरा है।

मनुष्य जो बोता है वही काटता है। कर्मों के अनुसार ही

वह देव, मनुष्य, त्रियंच अथवा नरक जाति का भागी बनता है और वहा के सुख दुख भोगता है।

महावीर स्वामी ने प्रथम बार जीव परमात्मा के निकट ले जाकर खड़ा कर दिया। उन्हे पहली बार महसूस हुआ था कि उनमे और परमात्मा मे कोई अन्तर नही। वे चाहे तो मनुष्य से परमात्मा के पद पर पहुच सकते है और चाहे तो उस पद से बहुत नीचे नरक गति तक जा सकते है। जन्म के बन्धन से छूटने का एक ही मार्ग है वह है मोक्ष जो रत्न त्रय धर्म से मिलता है और रत्न त्रय धर्म के लिये आवश्यक है।

सम्यक् दर्शन

सम्यक् ज्ञान

सम्यक् चरित्र

और इन तीनो की आधार शीला है अथवा बुनियाद है।

—अहिंसा

—इन्द्रियो का निग्रह

—सयमी जीवन

—सन्तोष भरा मन

—सहन शक्ति से भरा समभाव

सच्चे मानवो की भाति महावीर स्वामी ने इस आस्था को महान् गौरव दिया कि परम सुख मोक्ष प्राप्त करने के लिये केवल मनुष्य जीव ही अकेला जीव है। देवगति, त्रियंच गति अथवा नरक गति में भटकने वाले जीव के लिये यह संभव नहीं है कि वह जो मोक्ष गति पा सके। मोक्ष अथवा परम सुख पाने के लिये मनुष्य गति पाना ही आवश्यक है। अतः महाकवि रवीन्द्रनाथ टगोर का कथन और महावीर स्वामी का कथन एक सा है :

सबार थोपरि मानस सत्य

अर्थात् मनुष्य सब सत्यों से ऊपर है और हमारे अधिकांश दार्शनिक इस बात को दोहराते आये है कि मनुष्य जन्म बड़ी मुश्किल से मिलता है। इस जन्म का सही सही उपयोग होना चाहिये। ज्ञान जो कर्म को हटा सके वह सर्वोपरि होता है और केवल अकेला ज्ञान ही मनुष्य को परम पद पर पहुंचा सकता है।

महावीर स्वामी ने इस असत्य का भांडा फोड़ दिया कि आप धनदान, पशुदान स्त्री अथवा कन्यादान द्वारा अपने पापों का विमोचन करवा सकते है उन्होंने इस बात को पूर्ण ढंग से स्पष्ट कर दिया कि सबसे बड़ा दान है अभयदान। आप एक जीव को प्राण देकर दूसरे का सुख अथवा आर्शीवाद नहीं ले सकते। अभय-दान, के बाद आहार दान, और ज्ञान दान ही परम दान है। दान से अपना मन शुद्ध कर सकते है मन की मैल मिटा सकते है, मगर जो पाप कर्म आप से हो गये उन्हें मिटाने के लिये आप द्वारा किये गये काम ही काम आयेंगे। स्वर्ण, हीरे, पन्ने, संसार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है मगर ज्ञान की दृष्टि में नहीं क्योंकि इनका उद्गम स्थान वह धरती है जिस पर मनुष्य का सदैव अधिकार होता आया है। आप यदि किसी को दान दे सकते हैं तो केवल आप दया अथवा करुणा का दान दे सकते हैं, इसके अलावा आप कोई दान नहीं दे सकते। करुणा का दान अभयदान, आहार दान और सबसे बड़ा ज्ञान दान

गृहस्थ सांसारिक बन्धनों में रहकर भी जो जीव चाहे मुक्ति का सामान जुटा सकता है यह कहकर भगवान महावीर ने अपनी अतिशय उदारता का परिचय दिया था। यहीं नहीं वह यह था कि

थे कि ग्रहस्थ सरलता से सारा ज्ञान सारा धर्म अथवा सारी इन्द्री निग्रह एक दिन मे नहीं कर सकते। इसलिये उन्होने ग्यारह सीढ़ियां, अथवा ग्यारह प्रतिमाये स्थापित की थी। जो इस प्रकार हैं :—

(१) दर्शन प्रतिमा

अष्ट मूल गुण धारना करके सात व्यसन एवं अभ्यक्ष्य का त्याग प्रथम प्रतिमा है। शुद्ध सम्यक दर्शन के आठ अंगो का पालन करना भी इसी प्रतिमा मे शामिल है।

(२) व्रत प्रतिमा

प्रथम प्रतिमा को सफलता पूर्वक प्राप्त करके श्रावक दूसरे प्रतिमा मे प्रवेश करता है। इस प्रतिमा मे निम्न व्रतों का पालन करता है।—

(क) पांच अणुव्रत
(ख) तीन गुण व्रत
(ग) चार शिक्षा व्रत

इन व्रतों को लेकर जब सन्तोष पूर्वक सफलता पा लेता है तो तीसरी प्रतिमा आती है।

(३) सामयिक प्रतिमा

सुबह, शाम और दोपहर नियमित रूप से सामयिक करना। सब जीवो के प्रति समभाव रखना। गुस्सा पास नहीं फटकने देना सामयिक प्रतिमा है।

(४) प्रषौधोपवास प्रतिमा

मन और वचन शुद्ध हो जाने पर कार्य की ओर ध्यान जाना आवश्यक हैं और अब महिने में केवल चार दिन आहार जन्म का त्याग कर, धर्म ध्यान, भक्ति, शास्त्र स्वाध्याय मे समय बिताना।

इस प्रतिमा का अर्थ हुआ कि सब इन्द्री संयम प्रारम्भ।

(५) सचित त्यागः—

ऐसे हर फल जिनमे जीव होने की शंका हो उनका त्याग करना।

(६) रात्रिभुक्त त्यागः—

रात को सर्व प्रकार के आहार का त्याग करना। इसी प्रतिमा के अन्तर्गत वह दिन मैथुन आदि का भी त्याग करता है। अब तक उसका रतिभोगो पर कोई विशेष प्रतिबन्ध नही था लेकिन अब सैक्स क्रियाओ पर भी अंकुश प्रारम्भ हो गया।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमाः—

मन वचन और कार्य के ब्रह्मचारी होना। केवल ब्रह्म में लीन होने का उद्देश्य सामने रख कर ब्रह्मचर्य का पालन करना।

(८) आरम्भ त्यागः—

अर्थात त्याग की शुरुआत। इस प्रतिमा से श्रावक सम्पत्ति से मोह करना छोडना शुरु करता है और फिर अगली प्रतिमा तक त्याग समाप्त करता है।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमाः—

आकर विकसित होती है और श्रावक अपने शरीर के वस्त्र छोड़ कर सब कुछ त्याग कर देता है।

(१०) अनुमति त्याग:—

दसवी प्रतिमा के अन्तर्गत श्रावक संसार से विमुख होकर सांसारिक कार्यों मे अपनी अनुमति तक देना छोड़ देता है। संसार के कार्यों से उदासीन होकर केवल परोपकार जैसे कार्यों में रत होता है।

(११) उदिष्ट त्याग प्रतिमा:—

इस प्रतिमा से त्याग की सीमा और बढ़ जाती है। वह घर पर भोजन लेना त्याग देता है और घर का त्याग करता है तथा दो विशिष्ट सीमाये पार करता है। जैसे:—

(१) क्षुल्लक : खन्ड वस्त्र धारण करना।

(२) एलक : केवल लंगोटी लगाना।

इस प्रकार कोई भी मनुष्य, अपने आपको एक सीमा पार करके दूसरी सीमा तक पहुचने व दुसरी के बाद तीसरी सीमा तक जाने मे कठिनाई अनुभव नही करता और इन्द्रियो का दमन करके, कर्मों का विनाश करता हुआ ऐसी स्थिति मे आ जाता है जब वह शिशु बन जाता है।

न शोक न राग।
न द्वेष न ईर्ष्या।
न लज्जा न संकोच।

इन्द्रियो को जीतकर वह कामजयी बनता है, लज्जा को जीत कर वह नग्न होता है। नग्न होना इस बात की निशानी है कि

उसने इन्द्रियों को जीत लिया है। कामजयी हो जाता है । उसे नग्न अवस्था में रहते हुये भी अपनी नग्नता का बोध नही होता ।

धीरे धीरे कर्म समाप्त होते है और यदि केवल आयु कर्म शेष रहे तो मनुष्य जाति को सार्थक करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता है ।

महावीर स्वामी के जीवन में भी वह शुभ वेला आ पहुंची थी ।

कार्तिक कृष्ण की अमास्या को उस दिन मंगलवार था । ईस्वी पूर्व ५२७ की १४ सितम्बर को जब पौ फट रही थी, सूर्योदय हो रहा था । तो भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण वेला आ पहुची थी ।

१४ सितम्बर ईस्वी पूर्व ५२७

महाकवि अनूप के शब्दों मे ही सुनिये उस वेला का वर्णन—

दिनेश आरूण्य दिगन्त में लसा
विलोक मिथ्या जनक से धिपे
उषा न आई नभ में, धारत्रि में
प्रभाव छाया, जिन धर्म चक्र का
कुशेश्यो से, चक्रवाक से
शिलीमुखों से, नभ संगमादि से
स साधू साध्वी जनमोद युक्त थे
प्रहृष्ट थे श्रावक श्राविका :सभी
मुहूर्त में धर्म प्रभाव हो गया
मिटि कि हिंसा घनघोर यामिनि
उल्कक से पाप जतक से हुये
समस्त अस्तंगन अन्तरिक्ष मे

ग्रोर फिर

विनोधिता जीवन सुप्रभात मे
जगी विहंगावली सी सभी प्रभा
चतुर्दिश चारु निनाद यूं उठा
जिनेन्द्र की जै—जय जैन धर्म की

× × ×

ग्राया शाश्वत वार जो प्रथित१ है हिसा-निशा नाश मे,
सो वारेश उगा कि जो न ग्रघ का है लेश भी छोड़ता,
प्राणी संसृति के समुत्थित चले, जो धर्म-पाथेय ले,
यात्रा जीवन की सभी कर रहे ग्रा-बाल वृद्धावला२ ।

ऐसा मार्ग प्रशस्त है, न जिसमे है भ्रान्ति-शंका कहीं,
छायी ग्रंबर-मध्य जैन-मत की ग्रानन्द-कादम्बिनी३ ।
देती सौख्य वसन्त के पवन-सी सामायिकी-साधना,
काम-क्रोध-मदादि-कटक बिना सन्मार्ग है धर्म का ।

भव्यो ! है यह मेदिनी शिविर-सी जाना पड़ेगा कभी,
ग्रागे का पथ ज्ञात है न, इससे सद्बुद्धि ग्राये न क्यो ?
ले लो साधन धर्म के, न तुमको व्यापे व्यथा ग्रन्यथा,
है जैनेन्द्र-पदारविन्द-तरणी संसार-पाथोधि की ।

(महाकवि ग्रनूपशर्मा कृत महाकाव्य बृद्धगान से साभार।

१—प्रसिद्ध । २—स्त्री । ३—मेघ-माला ।

उप-संहार

भगवान महावीर की यशस्वी गाथा के नियत पृष्ठों का अन्तिम छोर आ पहुंचा है। भगवान महावीर की यशस्वी गाथा, उनके उपदेश तो एक महा समुन्द्र है। उस समुन्द्र में सीप नहीं, सब मोती ही है। उन मोतियों को पाने का मोह किसको नहीं होता। जब इस छोटी सी पुस्तिका के अन्तिम पृष्ठ लिखे जा रहे है तो लेखक को अपनी लिखी पूर्व पंक्तियां याद आ रही है कि मेरे देश की धरती, भारत की धरती गौरव मयी धरती है। इस धरती से महा पुरुष पैदा हुये जिन्होंने विश्व को नया चिन्तन नयी राह दी। और वे तीर्थंकर पैदा हुये जिन्होंने भारत भूमि को ही अपने मोक्ष का स्थान चुना। ऐसी वसुन्धरा से किसे प्यार न होगा।

अगले वर्षों मे भगवान महावीर के निर्वाण की पच्चीसवी शताब्दी का पर्व मनाया जायेगा। उस पर्व मे भारतवर्ष फिर विश्व को नया सन्देश देगा। विश्व की आंखें अभी भी भारत पर लगी है। गंगा के पावन घाटों पर, तीर्थों की धरती पर विदेशी श्रृणी नजर आ रहे है। कौन है ये लोग ये उस सम्पन्न उर्वरा देश के नागरिक है जिन्हे भोजन कीचिन्ता नहीं। वाहन की चिन्ता नहीं। चिन्ता होती है मानसिक शान्ति की।

कहां है वह शान्ति? कहां है वह सुख आत्म सुख के दीवाने हिप्पी एल. एस. डी. मे सुख ढूंढते है सुख ढूढते है वेहोशी मे और वे जितने इस सुख की ओर भाग रहे है उतनी ही मृग तृष्णा बढ़ रही है।

उनकी टोलियां भारत के हर जोर पर देखी जा सकती है। सिर मुन्डाये भक्तो के रूप मे कृष्ण की गोपियो के रूप में और आत्मा की अवहेलना करने वाले रोगियों के रूप में।

क्या पच्चीसवीं शताब्दी का समारोह इन्हे राह पर ला सकता है।

क्या एक बार भारत विश्व को यह बता सकता है कि आत्मा की शांति बेहोशी मे नही त्याग मे है। इन्द्रियो का दमन ससार का सबसे बडा सुख है। सयम सबसे बड़ी औषधि है और सहन करने की शक्ति सबसे बड़ा परहेज।

आने वाला पावन पर्व निश्चित रूप से हमे यह करने की शक्ति प्रदान करेगा। इस आशा के साथ इन पंक्तियो का लेखक आप से विदा लेता है और विश्वास दिलाता है कि यदि सुयोग उपस्थित होते रहे तो इस पावन पर्व पर इस दिशा मे कुछ और प्रयास प्रस्तुत करूंगा।

इस पुस्तिका में अनेको धर्म ग्रन्थो और विद्वजनों का सहयोग सम्मलित है। लेखक उन सभी जाने माने लेखको के प्रति और भारतीय ज्ञानपीठ के यशस्वी नियामक श्री लक्ष्मी चन्द जैन के प्रति अपनी विनम्रता ज्ञापन करके अपने अल्पज्ञान के प्रति चिंतित है। सभवत' अल्पज्ञान के कारण इसमे कोई गलत उल्लेख हो गया हो, जिसे सुविज्ञ जन सुधार कर पढे और लेखक को सूचित करें ताकि आगामी सस्करणो मे सुधार कर दिया जाये।

जयप्रकाश शर्मा
द्वारा प्रभात पाकेट बुक्स
हरी नगर मेरठ।

दर्शन पाठ

णमोकार मंत्र—

णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं।
णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण ॥
णमो लोए, सव्व साहुणं ।

नोट-इस मंत्र मे पाच पद्य है। यह मंत्र तीन श्वांसों में धीरे-धीरे और शुद्ध बोलना चाहिये। पहिले दो पद्य पहिले श्वांस मे, तीसरा और चौथा पद्य दूसरे श्वास मे, और पांचवां पद्य तीसरे श्वास मे बोलें। णमोकार मत्र को तीन बार, पाच बार या नौ बार बोलना चाहिए।

णमोकार मंत्र का अर्थ—

अरिहन्त प्रभु को नमस्कार हो, सिद्ध प्रभु को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायो को नमस्कार हो और लोक मे सब सच्चें साधुओं को नमस्कार हो ।

चत्तारि दन्डक—

चत्तारि मंगल, अरिहन्त मंगल, सिद्ध मं
साहु मगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्त लोगुत्तमा,
साहु लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो
चत्तारि सरणं पव्जामि, अरि न्त
सिद्ध सरण
केवली पण्णत्तो

दर्शन विधि

प्रातः उठकर स्नानादि क्रियाओं से निवृत होकर शुद्ध वस्त्र पहिन श्री मन्दिर जी जाकर देव दर्शन करना चाहिये। श्री मन्दिर जी मे जाते समय घर से लौंग, बादाम, चावल आदि सामग्री साफ करके ले जाना चाहिये। चलते समय रास्ते मे ये ध्यान रहे कि हमारा पैर किसी गन्दी वस्तु पर न पड़े और हमारे पैर से किसी जीव का घात न हो जाये। मन में भगवान का ध्यान रखना चाहिये। श्री मन्दिर जी में जाकर यथा स्थान पर जूते और मौजे उतार दें। ध्यान रहे कि चमड़े की पेटी व घड़ी का पट्टा आदि भी उतार कर ऐसे स्थान पर रखें, जो वेदी के सामने न दिखाई दें।

अब जल से अपने पैर और हाथ धोकर वेदी गृह मे दर्शन के लिए जायें। वेदी गृह मे जाते समय द्वार पर खड़े होकर इस प्रकार बोलना चाहिये—

ॐ जय, जय, जय, जयनिसहि जयनिसहि, जयनिसहि।

अब वेदी गृह में प्रवेश कर ऐसे स्थान पर खड़े हो जिससे किसी दूसरे दर्शन करने वाले को बाधा न हो। पहिले नमोस्तू नमोस्तू नमोस्तू बोलते हुए नमस्कार करना चाहिये। फिर सीधे खड़े होकर नीचे लिखे पाठ बोलने चाहियें।

दर्शन पाठ

णमोकार मंत्र—

णमो अरिहन्ताणं, णमो सिद्धाणं ।
णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं ।।
णमो लोए, सव्व साहुणं ।

नोट–इस मंत्र में पांच पद्य हैं। यह मंत्र तीन श्वासों में धीरे-धीरे और शुद्ध बोलना चाहिये। पहिले दो पद्य पहिले श्वास मे, तीसरा और चौथा पद्य दूसरे श्वास मे, और पांचवां पद्य तीसरे श्वास में बोलें। णमोकार मंत्र को तीन बार, पांच बार या नौ बार बोलना चाहिए।

णमोकार मंत्र का अर्थ—

अरिहन्त प्रभु को नमस्कार हो, सिद्ध प्रभु को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में सब सच्चे साधुओं को नमस्कार हो।

चत्तारि दन्डक—

चत्तारि मंगलं, अरिहन्त मंगलं, सिद्ध मंगलं
साहु मंगलं, केवलि पणत्तो धम्मो मंगलं ।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा,
साहु लोगुत्तमा, केवली पणत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।
चत्तारि सरणं पव्जामि, अरिहन्त सरणं पव्जामि,
सिद्ध सरणं पव्जामि, साहु सरणं पव्जामि,
केवली पणत्तो धम्मो सरणं पव्जामि ।

चत्तारि दन्डक का अर्थ—

मंगल चार होते हैं : (१) अरिहंत मंगल है, (२) सिद्ध मंगल है, (३) साधु मंगल है, (४) केवली भगवान के द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है।

लोक में उत्तम चार होते हैं: (१) अरिहन्त लोक मे उत्तम हैं, (२) सिद्ध लोक मे उत्तम है, (३) साधु लोक मे उत्तम हैं, (४) केवली भगवान द्वारा प्रणीत धर्म लोक मे उत्तम है।

मैं चार की शरण को प्राप्त होता हू : (१) मैं श्री अरिहन्त भगवान की शरण को प्राप्त होता हू, (२) मैं श्री सिद्ध भगवान की शरण को प्राप्त होता हू, (३) मैं साधुओ की शरण को प्राप्त होता हूं, (४) मैं केवली भगवान द्वारा प्रणीत धर्म की शरण को प्राप्त होता हू।

श्री चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति

श्री आदिनाथ अजित सम्भव सुमरो जी प्रभु अभिनन्दना।
चरण जिन जी के शीश धर-धर करु जी पल-पल वन्दना ॥१॥
श्री सुमतिनाथ पदम प्रभु जग तरण तारण सुपार्श्व जी।
श्री चन्दा प्रभु जी के चरण वन्दत मिटत यम की त्रास जी ॥२॥
श्री सुविधिनाथ सुदेव शीतल श्रेयांश त्रिभुवन ईश जी।
श्री वासु पूज्य जी के चरण निशदिन रहे मेरो शीश जी ॥३॥
श्री विमलनाथ अनन्त धर्म जी का ध्यान नित उठ मैं धरु।
श्री शांति प्रभु जी के चरण फरसत फिर चौरासी ना रुलू ॥४॥
श्री कुन्थनाथ, अरह जिनेश्वर, मल्लि अशरण शरण हैं।
श्री मुनिसुव्रत स्वामी जी के पड़त पावों हरत जन्म मरण हैं ॥५॥

श्री नमिनाथ, अरिष्ट नेमि, पारस पारस ध्याइए।
श्री महावीर स्वामी जी के चरण वदत निर्भय शिव सुख पाइए ॥६॥
छोड़ सकल मिथ्यात्व को गुरु धर्म की परीक्षा करो।
देव अरिहन्त नाम जप-जप मोक्ष मारग पग धरो ॥७॥
सदा जी मगल होत जपत्या ये चौबीसी का नाम है।
पढ़े तिलोक ऋषि जान निश्चय महासुखो की खान है ॥८॥

अब नीचे लिखा श्लोक पढ़कर साथ लायी हुई सब सामग्री चढ़ानी चाहिए—

उदक चन्दन तन्दुल पुष्प कैश्चरु सुदीप सधूप फल अर्घं कैः।
धवल मगल गान रवाकुने जिन गृहे जिन नाम अह यजे ॥
ओ३म ह्री श्री भगवज्जिन सहस्त्रनामे
भयो अध निर्वापामीत स्वाह।

सामग्री चढाने के बाद नमस्कार करें फिर स्तुति पढ़ते हुये वेदी के चारो ओर घूमकर तीन परिक्रमा देनी चाहिये। परिक्रमा देते समय चारो दिशाओ मे भगवान की तरफ मुंह करके शिरोन्नति देनी चाहिये अर्थात् जुड़े हुए हाथो को मस्तक के पास ले जाकर नमस्कार करना चाहिए। परिकमा देते समय ध्यान रहे कि यदि कोई नमस्कार कर रहा हो, तो उसके आगे से न चलें। या तो रुक जायें या उसके पीछे से होकर चलें। परिक्रमा के बाद गन्दोधक मस्तक पर, उर पर तथा गले आदि पवित्र स्थानो पर नाभि से ऊपर लगाना चाहिये। गन्दोधक नीचे न गिरने पाये। इससे अविनय होता है। गन्दोधक कनकी अंगुली के पास वाली अंगुली और बीच की अगुली से ही लेना चाहिये। पूरा हाथ अर्थात पाचो अंगुली नही डुबानी चाहिये।

परिक्रमा स्तुति

मैं तुम चरण कमल गुण गाय ।
बहु विधि भक्ति करी मन लाय ॥
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि ।
यह सेवा फल दीजे मोहि ॥
कृपा तिहारी ऐसी होय ।
जामन मरन मिटावो मोय ॥
बार बार मैं विनती करूं ।
तुम सेवा भवसागर तरूं ॥
नाम लेत सब दुख मिट जाय ।
तुम दर्शन देखे प्रभु माय ॥
तुम हो प्रभु देवन के देव ।
मैं तो करूं चरण तव सेव ॥
मैं आयो दर्शन के काज ।
मेरो जन्म सफल भयो आज ॥
दर्शन करके नवाऊं शीश ।
मुझ अपराध क्षमहु जगदीश ॥

सुख देना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान ।
मो गरीब की विनती, सुन लीज्यों भगवान ॥
दर्शन करते देव का, आदि मध्य अवसान ।
सुरगन के सुख भोग कर, पावै मोक्ष निदान ॥
जैसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय ।
जो सूरज में जोत है, तारा गण नहीं सोय ॥

नाथ तिहारे नामतै, अघ छिन माहि पलाय ।
ज्यों दिनकर परकाशते, अन्धकार विनशाय ।।
और प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु बहुत अजान ।
दर्शन विधि जानो नही, शरन राखि भगवान ।।
बिन मतलब बहुत तिरे, तार देव स्वमेव ।
मेटो कारज सफल कर, कर देवन कि देव ।।
मेरी तो तोसे बन्वी, का से करूं पुकार ।

तत्पश्चात् शास्त्र स्वाध्याय करें और शास्त्र स्तुति पढ़कर शास्त्र जी को नमस्कार करना चाहिये । प्रतिदिन नमोंकार मंत्र की एक माला अर्थात् १०८ बार जपना चाहिये । प्रत्येक कार्य मे जो दोष लगता है वह १०८ प्रकार का होता है । अतः जाप करने से वह घोर पाप दूर होता है ।

शास्त्र स्तुति

बीर हिमाचल तैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुन्ड ढरी है ।
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़ता तप दूर करी हैं ।।
ज्ञान-पयो निधि माही रली, बहु-भंग तरंगनि सो उछरी है ।
ता शुचि शारद-गंग नदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है ।।
या जग मन्दिर मे अनिवार, अज्ञान-अन्धेर छयो अति भारी ।
श्री जिनकी धुनि दीप शिखामय, जो नही होत प्रकाशन हारी ।।
तो किस भांति पदारथ-पाति, कहा लहते ? रहते अविचारी ।
या विधि संत कहै धनि हैं, धनि है जिन-वैन बड़े उपकारी ।।

जिन-वाणी के ज्ञान से, सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक चढे, सदा देत हूं धोक ॥
हे जिन-वाणी भारती, तोहि जपूं दिन रैन।
जो तेरा शरना गहे, सो पावे सुख चैन ॥

प्रभु स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी मेटो जामन मरन जी ॥
तुम ना पिछानो आन मानो देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जानो भ्रम गिनो हितकार जी ॥१॥
भव विकट वन मे कर्म वैरी ज्ञान धन मेरो हरो।
तब ईष्ट भूलो भ्रष्ट होए अनिष्ट गति धरतो फिरो ॥
धन घड़ी यो धन दिवस योही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो दर्श प्रभु जी को लखि लयो ॥२॥
छबि वीतरागी नग्न मुद्रा दृष्टि नाशा पै धरैं।
वसु प्रतिहार्य अनन्नत गुण युत कोटि रवि छवि को हरैं ॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो उदय रवि आतम भयो।
मो उर हर्ष ऐसो भयो मनु रंक चिन्ता-मणि लयो ॥३॥
मैं हाथ जोड़न नाऊं मस्तक वीनऊ तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन सुनहू तारन तरन जी ॥
जाचहुं नहीं सुवास, पुनि नरराज, परिजन साथ जी।
'बुद्ध' जाचहु तुम भक्ति भव-भव दीजिये शिवनाथ जी ॥४॥

स्तुति

दया कर दया कर दया धर्म धारी ।
हम आये हुए है शरण मे तुम्हारी ॥टेक॥
नहीं हमने अपना समय सार जाना ।
सदा पर पदार्थों मे अपनत्व माना ॥
उन्हे याद करते रहे रात दिन हम ।
जिन्हें सर्वदा के लिए था भुलाना ॥
अहो. मूल मे ही रही भूल भारी ।
हम आये हुए है शरण मे तुम्हारी ॥१॥
प्रभु कर्म मेरे घिरे आस्रवो से ।
रही प्रीति मेरी सदा [illegible] ॥
मिलेगा उन्हे देव निस्तार कैसे ।
बहे लोक सागर मे [illegible] ॥
सम्भालो खिवैया यह नैया हमारी ।
हम आये हुये है शरण मे तुम्हारी ॥२॥
सुलभ हो मुझे भेद विज्ञान अपना ।
पृथक पुद्गलों से [illegible] ॥
धारूं आतम चिन्तन [illegible] ।
[illegible] ॥
कृपानाथ तुमसा बनूं [illegible] ।
हम आये हुए है शरण मे तुम्हारी ॥३॥

सुना देव तारन तरन नाम तेरा।
इसी से लिया है चरण में बसेरा ॥
तुम्हीं सुप्रभातम तुम्ही हो सवेरा।
तुम्हीं ने प्रभु कर्म पथ को निवेरा ॥
कहां तक कहे नाथ महिमा तुम्हारी।
हम आये हुए हैं शरण में तुम्हारी ॥४॥

श्री महावीर स्तुति

महावीर प्रभु के चरणों में, श्रद्धा के कुसुम चढायें हम।
उनके आदर्शों को अपना, जीवन की ज्योति जगायें हम ॥
तप संयम-मय शुभ साधन से, आराध्य चरण आराधन से।
बन मुक्त विकारों से सहसा, अब आतम विजय कर पाये हम ॥१॥
दृढ़ निष्ठा नियम निभाने मे, हो प्राण बलि प्रण पाने मे।
मजबूत मनोबल हो ऐसा, कायरता कभी न लायें हम ॥२॥
यश लोलुपता पद लोलुपता, न सतायें कभी विकार व्यथा।
निष्काम स्व पर कल्याण काम, जीवन अर्पण कर पाये हम ॥३॥
गुरुदेव शरण में लीन रहे निर्भीक धर्म की बाट वहें।
अविचल दिल सत्य अहिंसा का, दुनियां को सुपथ दिखायें हम ॥४॥
प्राणी-प्राणी सह मैत्री सधे, ईर्ष्या मत्सर अभिमान तजें।
कहनी करनी इकसार बना, तुलसी तेरा पथ पायें हम ॥५॥

(भजन) वीर जन्म

सच्चे हैं वो सच्चे त्रिशला की आंख के तारे ।
सारे जग के परम हितू, सिद्धार्थ के राजदुलारे ॥ टेक ॥
हम कैसे महिमा गायें, नहीं पार गुणों का पाये ।
कुन्डलपुर मे जन्म लिया पावन देश विहार किया ॥
चैत सुतेरस शुभ थी घड़ी, नरकों मे भी शांति पड़ी ।
तीन लोक मे आनन्द छाया, हुए वीर के जय जय कारे ॥१॥
हिंसा ज्वाला भड़क रही, जब सारी दुनिया दहक रही ।
तब वीर प्रभु ने आकर के, और दया धर्म बतला करके ॥
हिंसा दूर भगाई थी, और जुल्म की करी सफाई थी ।
खुद जीवो जीने दो सब को, जोर से वीर पुकारे ॥२॥
औ स्याद्वाद समझाया था, सिद्धान्त धर्म बतलाया था ।
जो नर जैसा कर्म करे, उसका फल वो खुद ही भरे ॥
सुख दुःख दाता कोई नहीं, कर्ता भोक्ता आप सही ।
आतम ही परमातम हो, जो कर्म का मैल उतारे ॥३॥
वीर प्रभु हितकारी है, लोका लोक निहारी हैं ।
इनके राग और द्वेष नहीं, किंचित दोष का लेश नहीं ॥

भजन नं० २

वीर स्वामी का सुन्दर अधर पालना।
सज रहा है सिद्धारथ के घर पालना।
जिसमें रेशम की सुन्दर पड़ी डोरियां।
सच्चे मोती लगाये-चहूं ओरियां॥
है सुशोभित यह सुन्दर अधर पालना। वीर०।
झुनझुना माता त्रिशलावती ले रही।
वीर के हाथ मे हंस के जब दे रही॥
देव देवी ने मिल कर झटोका दिया।
त्रिशला माता ने देवो को हुक्म दिया।
हिलने दो बेखबर बेखतर पालना।
वीर का हिल रहा बेखतर पालना। वीर०।
देव इन्द्रादि मिल पुष्प बरसा रहे।
सारे नर नारी हृदय मे हरषा रहे॥
देखने जा रहा हर बसर पालना। वीर०।
जन्म उत्सव का दिन मिल मनाओ सभी।
यह 'किशन' ने लिखा है अमर पालना। वीर०।

भजन नं० ३

महावीर स्वामी, हो अन्तर यामी।
हो त्रिशला नन्दन, काटो भव फन्दन ॥
जाते ही पन मे, तप कीना वन मे।
दरश दिखाया, भूल न जाना ॥
पार लगाना, कृपा निधाना।
महिमा तुम्हारी, है जग मे न्यारी ॥
सुधि लो हमारी, हो व्रत के धारी ॥
वन खण्ड तप करने वाले, केवल ज्ञान के पाने वाले।
सद् उपदेश सुनाने वाले, हिंसा पाप मिटाने वाले ॥
हो तुम कष्ट मिटाने वाले, पशुवन बन्धन छुडाने वाले।
स्वामी प्रेम बढाने वाले, हो तुम नियम 'सिखाने वाले ॥
पूरण तप के करने वाले, भगतो के दुख हरने वाले।
पावापुर मे आने वाले, स्वामी मोक्ष के जाने वाले ॥

भजन नं० ४

मणियों के पालने में स्वामी महावीर झूलें।
रेशम की डोरी पड़ी मोतियो में गुथवा लड़ी ॥
त्रिशला माताजी खड़ी देखकर हृदय में फूलें ॥ मणि०
चुटकी बजाय रही हंस के खिलाय रहीं।
राजा सिद्धारथ मगन होके राज-पाट को भूलें ॥ मणि०
कुण्डलपुरवासी सारे बोले है जय जयकारे।
दर्शन कर प्रेम से महाराज के चरणो मे झूले ॥ मणि०
इन्द्रादि देव आये शीश चरणो को झुकाये।
'किशना' के हृदय की मटकने लगी सारी भूलें ॥ मणि०

भजन नं० ५

महावीर दया के सागर तुमको लाखो-प्रणाम ।
श्री चांदनपुर वाले तुमको लाखो प्रणाम ॥

पार करो दुखियों की नैया ।
तुम बिन जग मे कौन खिवैया ॥
मात पिता न कोई भैया ।
भगतो के रखवाले तुमको लाखों प्रणाम ॥ महा०

जब ही तुम भारत मे आये ।
सबको आ उपदेश सुनाये ॥
जीवो के आ प्राण बचाये ।
बन्ध छुड़ाने वाले तुमको लाखो प्रणाम ॥ महा०

सब जीवों मे प्रेम बढाया ।
राग द्वेष सबका छुड़वाया ॥
हृदय से अज्ञान हटाया ।
धर्म वीर मतवाले तुमको लाखो प्रणाम ॥ महा०

समोशरण में जो कोई आया ।
उसका स्वामी परण निभाया ॥
भव सागर से पार लगाया ।
भारत के उजियारे तुमको लाखों प्रणाम ॥ महा०

'किशनलाल' को भारी आशा ।
सदा रहे दर्शन का प्यासा ॥
धर्म पुरा देहली में वासा ।
कहदे बुरा वाले तुमको लाखो प्रणाम ॥ महा०

भजन नं० ६

सब मिल के आज जय कहो श्री वीर प्रभु की।
मस्तक झुका के जय कहो श्री वीर प्रभु की।। टेक
विघ्नों का नाश होता है लेने से नाम के।
माला सदा जपते रहो श्री वीर प्रभु की।। सब···
ज्ञानी बनो दानी बनो बलवान भी बनो।
अकलंक सम बन के कहो जय वीर प्रभु की।। सब
होकर स्वतन्त्र धर्म की रक्षा सदा करो।
निर्भय बनो अरु जय कहो श्री वीर प्रभु की।। सब···
तुमको भी अगर मोक्ष की इच्छा हुई है 'दास'।
उस वाणी पै श्रद्धा करो श्री वीर प्रभु की।। सब···

भजन नं० ७

हे वीर तुम्हारे द्वारे पर एक दर्श भिखारी आया है।
प्रभु दर्शन भिक्षा पाने को दो नयन कटोरे लाया है।।
नहीं दुनिया में कोई मेरा है आफत ने मुझको घेरा है।
प्रभु एक सहारा तेरा है जग ने मुझको ठुकराया है।।
धन दौलत की कुछ चाह नहीं घरबार छूटे परवाह नहीं।
मेरी इच्छा तेरे दर्शन की दुनिया से चित्त घबराया है।।
मेरी बीच भवर में नैया है बस तू ही एक खिवैया है।
लाखों को ज्ञान सिखा तुमने भवसिन्धु से पार उतारा है।।
आपस में प्रीत व प्रेम नहीं तुम बिन अब हमको चैन नहीं।
अब तो तुम आकर दर्शन दो त्रिलोकी नाथ अकुलाया है।।
जिन धर्म फैलाने को भगवन कर दिया है मन धन अर्पन।
नव-युवक मण्डल स्थापना करो सदा का भार उठाया है।।

भजन नं० ८

वीर क्या तेरी निराली शान है।
देख के दुनियां जिसे हैरान है।। टेक।।
जाने क्या जादू भरा है आप मे।
हर बशर को आपका ही ध्यान है।। वीर० ॥१॥
सैकड़ो मीलों से आते हैं यहां।
दर्श बिना तेरे दुनिया हैरान है।। वीर० ॥२॥
जिसने जो हसरत तुम्हें जाहिर करी।
आपने पूरा किया अरमान है।। वीर० ॥३॥
जो भी आया आपके दरबार मे।
उसको मुंह माँगा दिया वरदान है।। वीर० ॥४॥
जीव हिंसा को हटाया आपने।
सारे जीवों पर तेरा अहसान है।। वीर० ॥५॥
रास्ता मुक्ति का बतलाया हमें।
तेरा ममनु सारा हिन्दुस्तान है।। वीर० ॥६॥
काम धेनु सी है ज्योति आप मे।
वो ही शक्ति आप में परधान है।। वीर० ॥७॥
है दया करना धर्म इन्सान का।
वीर स्वामी का यही फरमान है। वीर० ।८।
'राज' पै भी इनायत की नजर।
आपके सम्मुख खड़ा नादान है। वीर० ।९।

भजन

भक्तो के प्राण पुकार रहे जय हो जय त्रिशला नन्दन की।
श्वासो के स्वर मे लहर उठी जय हो जय त्रिशला नन्दन की।
मर रही पाप से दुनिया थी जब तुम दुनियाँ मे आये थे।
जब हूक हृदय से टकराई पशुओ के करुणा क्रन्दन की। १।
श्रो त्रिशला नन्दन चरणो मे लेलो मेरा वन्दन लेलो।
ये भाव की प्याली भरी हुई लाया हू केशर चन्दन की। २।
अहिंसा की धारा छलक पड़ी विपुलाचल गिरवर से छल।
दुनियाँ इक स्वर से बोल उठी जय महावीर दुख भजन की।३।
वो राह बता दो हमको भी बन जाऊ शिवपुर का राही।
वह डगर कौन चलकर अंजन को पदवी मिली निरजन की।४।
तेरी करुणा की किरणो से जिस जिसने थी करुणा पाई।
सब पथिने मोक्ष के हुए काट डोरी कर्मो के बन्धन की।।५।।

भजन नं० ६

मन हर तेरी मूरतिया मस्त हुआ मन मेरा।
तेरा दर्श पाया पाया, तेरा दर्श पाया ।। टेक ।।
प्यारा-प्यारा सिंहासन अति भा रहा, भा रहा।
उस पर रूप अनूप तिहारा छा रहा छा रहा।
पद्मासन अति सोहे रे नैना निरख हरित चित।
ललचाया, पाया तेरा० ।।
प्रभु भक्ति से भव के दुःख मिट जाते है जाते है,
पापी तक भी भवसागर तिर जाते है जाते है।।
शिव पद वोही पाया रे शरणागत मे तेरी जो तीक

आया, पाया तेरा० ।।
सांची कहूं खोई निधि मुझको मिल गई, मिल गई ।
उसको पाकर मन की अंखियां खुल गई खुल गई ।
आशा पूरी होगी रे आशा लगाये 'वृद्धि तेरे !
द्वारा आया-पाया, तेरा० ।।

भजन नं० १०

वीरा वीरा मैं पुकारूं तेरे दर के सामने ।
मन तो मेरा हर लिया महावीर जी भगवान ने ।।
मोहिनी छवि को दिखादो अब मेरे भगवान मुझे ।
तेरी चर्चा हम करेंगे, हर बशर के सामने ।। वीरा०
डूबते श्रीपाल को तुमने बचाया है प्रभो ।
द्रोपदी की लाज राखी कौरव-दल के सामने ।। वीरा०
द्वारका बनकर सरप जब खा लिया उस सेठ को ।
उसने सुमरण किया महावीर जी के नाम को । वीरा०
चित्त हम सबका भटकता, वीर के दीदार को ।
कर जोड़ के देखा करूं, मैं तेरे दर के सामने ।। वीरा०

भजन नं० ११

हमें वीर स्वामी तुम्हारा सहारा ।
कुन्डल पुर के राजा सिद्धारथ का प्यारा ।
जो दर्शन दिये दुबारा भी देना ।
दह त्रिशलावतिजी के आंखों का तारा ।।

सुना करता था जो तारीफ स्वामी ।
तो वैसा ही पाया नजारा तुम्हारा ।२।
अजब मुस्कराहट अजब शान तेरी ।
अजब नूर तुम्हारा है स्वामी तुम्हारा ।३।
जो छीना है दिलको न दिलको हटाना ।
हटा लोगे दिलको न होगा गुजारा ।४।
करो सेवको की महावीर रक्षा ।
है सब प्राणियो को सहारा तुम्हारा ।५।
दया हमपे करना दया के हो सागर ।
करोगे तुम्ही भवसागर से पारा ।६।
सिवा प्रेम के हम पै देने को है क्या ।
झुका बस यह चरणो मे शीश हमारा ।७।

भजन नं० १२

वह दिन था मुबारक शुभ थी घड़ी, जब जन्मे थे महावीर प्रभु ।
सब नरक मे भी थी शान्ति पड़ी, जब जन्मे थे महावीर प्रभु ।।
तिथि चैत सुतेरस प्यारी थी, वह धन्य कुण्डनपुर नगरी ।
सिद्धार्थ पिता त्रिशला उरसे, वे जन्मे थे महावीर प्रभु ।

जब धर्म कर्म था नष्ट हुआ, आचार जगत का बिगड़ गया।
तब शुद्धाचार सिखाने को, वे जन्मे थे महावीर प्रभु।
जब यज्ञ मे लाखो पशुओ का, होता था बलिदान महा।
तब हिंसा दूर हटाने को वे जन्मे महावीर प्रभु।
जब कर्त्ता वाद अज्ञान बढा, सिद्धान्त कर्म को भूल गये।
तब स्याद्वाद समझाने को, वे जन्मे थे महावीर प्रभु।
जब भटक रहे थे भव वन मे, शिवराह नजर नही आता था।
तब मुक्ति का मार्ग बताने को, वे जन्मे थे महावीर प्रभु।

भजन नं० १३

कुण्डलपुर के श्री महावीर भज प्यारे तू श्री महावीर।
जय महावीर जय महावीर भज प्यारे तू श्री महावीर।
मुक्ति नायक श्री अतिवीर, जय जय वर्धमान गुणधीर।
त्रिशला नन्दन गुण गम्भीर, राय सिद्धारथ के सुत वीर।
मोह महानल को तुम वीर, कर्म जलद को हरण समीर।
तप कर तोर कर्म जंजीर, केवल ज्ञान लहा बलवीर।
दे उपदेश हरी जग पीर, शिवपुर पहुचे भव के तीर

भजन नं० १४

मेरे भगवान मेरी यही आश है।
पार कर दोगे बेड़ा यह विश्वास है।
मन के मन्दिर मे आंखो के रस्ते तुझे।
मेरे भगवान लाना पड़ा है मुझे।
मेरे दिल से न जाना यह अरदास है।
तेरे रहने को मन्दिर बनाया है मन।
तेरे चरणो पै अरपन किया तन व धन।
मेरे दिल से न जावोगे यह विश्वास है।
प्रेम की डोर से बांध कर प्रभो।
मन के मन्दिर मे रक्खूंगा तुमको विभो।

तुमको जाने न दूंगा न अवकाश है ॥

भजन नं० १५

तेरे दर को छोड़कर, किस दर जाऊं मैं ।
सुनता मेरी कौन है, जिसे सुनाऊं मे ।
जबने नाम भुलाया बोरा, लाखो कष्ट उठाये हैं ।
न जाने इस जीवन अन्दर, कितने पाप कमाये हैं ।
मेरे दुष्ट कर्म ही मुझको, तुमसे न मिलने देते हैं ।
जब मैं चाहू दर्शन पाना, रोक तब ही वह लेते है ।
छींटा दो प्रभु ज्ञान का शरण मे आऊं मैं ॥
मोह मिथ्या में पड़कर स्वामी नाम तिहारा भूला था ।
जिसको समझा था सुख मैंने दुख का गोरखधधा था ।
मोह माया को छोड़कर शरण खडा हू मैं ।
बीत चुकी सो बीत चुकी अब शरण तिहारी आया हूं ।
दर्शन भिक्षा पाने को दो दो नैन कटोरे लाया हू ।
मन में अपना ज्ञान का दीप जलाऊं मैं ।
सुनता मेरी कौन है किसे सुनाऊं मैं ।

भजन नं० १६

महावीर स्वामी मैं क्या चाहता मैं ।
फकत आपका आसरा चाहता हूं ।
मिली तुमको पदवी जो निर्वाण पद की ।
कि तुझ जैसा मै भी हुआ चाहता हू ।
फसा हू मैं चक्कर मे आवागमन के ।
कि अब इससे होना रिहा चाहता हू ।
दया कर दया कर तू मुझ पर दयालु ।
दया चाहता हू दया चाहता हू ।
बुरा हूं भला हू अधम हू कि पापी ।
क्षमा कर तू मुझ पै क्षमा चाहता हू ।

आरती

जय सन्मति देवा प्रभु जय सन्मति देवा ।
वीर महा अति वीर प्रभुजी वर्द्धमान देवा । टेक ।
त्रिशला उर अवतार लिया प्रभु सुर नर हरषाये ।
पन्द्रह मास रतन कुण्डलपुर धनपति बरसाये । जय० ।
शुक्ल त्रयोदशी चैत्र मास की, आनन्द करतारी ।
राय सिद्धारथ घर जन्मोत्सव, ठाठ रचे भारी । जय० ।
तीस बरस तक रहे घर में, बाल ब्रह्मचारी ।
राज त्याग कर भर यौवन मे, मुनि दीक्षा धारी । जय० ।
द्वादश वर्ष तप किया दुद्धर, विधि चकचूर किया ।
झलके लोकालोक ज्ञान में, सुख भरपूर लिया । जय० ।
कातिक श्याम अमावस के दिन जाकर मोक्ष बसे ।
पर्व दिवाली चला तभी से, घर घर दीप जले । जय० ।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, शिव मग परकाशी ।
हरिहर ब्रह्मा नाथ तुम्ही हो, जय जय अविनाशी । जय० ।
दीनदयाला जग प्रतिपाला, सुर नर नाथ भजे ।
सुमरत विघ्न टरें इक छिन मे पातक दूर भजे । जय० ।
चोर, भील, चांडाल उभारे, भव दुःख हरता तू ही ।
पतित जान 'शिवराम' उभारो हे जिन शरण गही । जय० ।

आरती

यह विधि मंगल आरती कीजे, पंच परमपद भज सुख लीजे । टेक
प्रथम आरती श्री जिनराजा, भवदधि पार उतार जिहाजा । यह०
दूजी आरती सिद्धन केरी, सुमरन करत मिटे भव फेरी । यह०
तीजी आरती सूर मुनिन्दा, जनम, मरण, दुःख दूर करिन्दा । यह०
चौथी आरती श्री उवझाया, दर्शन देखत पाप पलाया । यह०
पांचवीं आरती साधु तुम्हारी, कुमति विनाशन शिव अधिकारी । यह०
छट्ठी ग्यारह प्रतिमा धारी श्रावक वन्दू आनन्दकारी । यह०
सातवीं आरती श्री जिनवाणी, 'द्यानत' स्वर्ग मुकति सुखदानी ॥

(महावीर की अमर कहानी)

सुनो सुनो ए दुनिया वालों महावीर की अमर कहानी । सुनो
तीस वर्ष का त्रिशलानन्दन सन्मति घर से निकला ।
सिद्धारथ नृप का प्रिय कुमार वह कर्म काटने निकला ।
राजपाट परिवार त्याग के वह जंगल में आया ।
बाहर भीतर हुआ दिगम्बर ज्ञान ध्यान ध्याया । सुनो ।
घोर तपस्या करके उसने बारह वर्ष बिताये ।
कर्म काट के केवल पाया सब प्राणी हर्षाये ।
यज्ञों में नर पशु मरते थे आकर शीघ्र बचाये ।
मोह नींद से जगा जगाकर सम्यक ज्ञान कराये । सुनो ।
धर्म उपदेश देकर जग को सुखमय उसे बनाया
स्याद्वाद का पाठ पढ़ाके हठ का भूत भगाया ।
मोक्ष मार्ग बतलाकर प्रभु ने प्राणी मुक्त करवाया ।
पावापुर के बीच सरोवर बन्धन तज शिव पाया । सुनो
बापू ने भी शिक्षा ले देश मुक्त करवाया ।
चला सदा जो वीर मार्ग से लौट न जग में आया ।
सत्य अहिंसा ज्ञान रूप जो वीर ने धर्म बताया ।
सिद्ध वहे सुज्ञों ने उसको भक्ति से अपनाया । सुनो सुनो ।

चांदनपुर महावीर

कुण्डलपुर के श्री महावीर, भज प्यारे तू जय महावीर ।
जय महावीर जय महावीर, भज प्यारे तू जय महावीर ।
चरण पुजें चांदनपुर तीर, जहां नदी बहती गम्भीर ।
उस टीले की ही तस्वीर, जहां दिया गैया ने नीर ।
जहां पड़ी भक्त पर भीर, तहां हरी हृदय की पीर ।
वर्द्धमान स्वामी अति वीर, सन्मति वीर श्री महावीर ।
भक्तजनों की बांधो धीर, हो न जावे 'किसन' दिलगीर ।

श्रद्धा के फूल

वीरा वीरा मैं पुकारूं तेरे दर के सामने।
मन तो मेरा हर लिया महावीर जी भगवान ने ॥
मोहिनी छवि को दिखा दो अब मेरे भगवन मुझे।
तेरी चर्चा हम करेंगे, हर बशर के सामने। वीरा०
डूबते श्रीपाल को तुमने बचाया है प्रभो!
द्रोपदी की लाज राखी कौरव दल के सामने। वीरा०
हार का बनकर सरप जब खा लिया उस सेठ को।
सोमा ने सुमरन किया महावीर जी के नाम को। वीरा०
चित्त दृग सबका भटकता वीर के दीदार को।
कर जोड़कर देखा करूं मैं तेरे दर के सामने। वीरा०

× × ×

एक प्रेम-पुजारी आया है चरणों में ध्यान लगाने को।
भगवान तुम्हारी मूरत पर श्रद्धा के फूल चढाने को ॥
तुम त्रिशला के दृग तारे हो पतितों के नाथ सहारे हो।
तुम चमत्कार दिखलाते हो, भक्तों का मान बढाने को। १।
तुम्हारे वियोग मे हे स्वामी हृदय व्यथा बढती जाती।
भारत मे फिर से आजाओ, जिनधर्म का रंग जमाने को। २
उपदेश धर्म का देकर के फिर, धर्म सिखादो भारत को।
आओ एक बार प्रभु आओ, हिंसा का नाम मिटाने को। ३
प्रभु तुमरे भक्त भटकते हैं, तेरे नाम को हर दम रटते हैं।
'त्रिलोकी' नित्य तरसता है, प्रभु आपके दर्शन पाने को। ४

श्री महावीर चालीसा

(शमशाबाद निवासी स्व० पूरनमल कृत)

दोहा—सिद्ध समूह नमो सदा, अरु सुमिरुं अरिहन्त।
निर आकुल निर्वांछ हो, भए लोक के अन्त।
मंगल मय मंगल करन, वर्धमान महावीर।
तुम चिंतत चिंता मिटे, हरो प्रभु सर्व शरीर।

(चौपाई)

जय महावीर दया के सागर, जय श्री सन्मति ज्ञान उजागर।
शांत छवि मूरत अति प्यारी, वेष दिगम्बर के तुम धारी।
कोटी भानु से अति छवि छाजे, देखत तिमिर पाप सब भाजे।
महाबली अरि कर्म विदारे, जोधा मोह सुभट को मारे।
काम क्रोध तजि छोड़ी माया, क्षण में मान कषाय भगाया।
रागी नहीं नहीं तू द्वेषी, वीतराग तू हित उपदेशी।
प्रभु तुम नाम जगत में सांचा, सुमिरत भागत भूत पिशाचा।
राक्षस यक्ष डाकिनी भागे, तुम चिंतत भय कोई न लागे।
महा शूल को जो तन धारे, होवे रोग असाध्य निवारे।
व्याल कराल होय फणधारी, विष को उगले क्रोध कर भारी।
महाकाल सम करै डसन्ता, निर्विष करो आप भगवन्ता।
महामत्त गज मद को झारै भगे, तुरन्त जब तोहि पुकारे।
फार डाढ सिंहादिक आवै, ताको हे प्रभु तूही भगावै।
होकर प्रबल अग्नि जो जारै, तुम प्रताप शीतलता धारै।
शस्त्रधार अरि युद्ध लडन्ता, तुम दृष्टि हो विजय तुरन्ता।
पवन प्रचण्ड चले झकझोरा, प्रभु तुम हरो होय भय चोरा।
झारखण्ड गिरि अटवी मांही, तुम बिन शरण तहां कोउ नाहीं।
वज्रपात करि घन गरजावै, मूसलधार होय तड़कावै।
होय अपुत्र दरिद्र सन्ताना, सुमिरत होय कुबेर समाना।
बन्दी-गृह में बन्धी जन्जीरा, कट सुई अनि में सकल शरीरा।

राज दण्ड करि मूठ धरावै, हारि सिंहासन तुही बिठावै।
न्यायाधीश राज कहलावै, विजय करे हो सदा तुम्हारी।
जहर हलाहल दुष्ट मिलन्ता अमृत सम प्रभु करो तुरन्ता।
चढ़े जहर जीवादी डसन्ता, निर्विष क्षण में आप करन्ता।
एक सहस वसु तुमरे नामा, जन्म लियो कुण्डलपुर धामा।
सिद्धारथ नृप सुत कहलाए, त्रिशला मात उदर प्रगटाये।
तुम जनमत भयो लोक अशोका, अनहद शब्द भयो तिहु लोका।
इन्द्र ने नेत्र सहस्र करि देखा, गिरि सुमेर कियो अभिषेखा।
कामादिक तृष्णा संसारी, तज तुम भए बाल ब्रह्मचारी।
अथिर जान जग अनित विसारी, बालपने प्रभु दीक्षा धारी।
शांति भाव धर कर्म विनाशे, तुरतहि केवल ज्ञान प्रकाशे।
जड़ चेतन त्रय जग के सारे हस्त रेखवत् तू है निहारे।
लोक अलोक द्रव्य षट् जाना, द्वादशांग का रहस्य बखाना।
पशु यज्ञ का मिटा कलेशा, दया धर्म देकर उपदेशा।
बहुमत और कुवादि दंगी, रहने न दियो एक पाखंडी।
पंचम काल विषै जिनराई, चांदनपुर प्रभुता प्रगटाई।
क्षण में तोपनि बाढि हटाई, भक्तन के तुम सदा सहाई।
मूरख नर नहिं अक्षर ज्ञाता, सुमिरत पंडित होय विख्याता।

सोरठा

करे पाठ चालीस दिन नित चालीसहिं बार।
खेवै धूप सुगन्ध पढ़ि श्री महावीर अगार।
जनम दरिद्री होय अरु, जिसके नहिं सन्तान।
नाम वंश जग में चले, होय कुबेर समान। २०॥

— समाप्त —